उम्मुल मोमिनीन
हज़रत आइशा सिद्दीक़ा *(रज़ि.)*

लेखक
माइल ख़ैराबादी

अनुवाद
आइशा ख़ानम

विषय-सूची

उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा सिद्दीक़ा (रज़ि.)	5
बचपन	7
शादी	10
तालीम और तरबियत	14
घरेलू ज़िन्दगी	30
सौतनों के साथ	46
सौतेली औलाद के साथ सुलूक	52
शैतान की चाल	55
बीवियों को चुनाव का अधिकार देनेवाली आयत	75
शहद का क़िस्सा	80
नबी (सल्ल.) के बाद	92
तीसरे ख़लीफ़ा के ज़माने में	96
दीन का इल्म फैलाना	104
तालीम देने का ढंग	107
फ़तवे	125
लोगों को जिन बातों से रोका	129
शख़्सियत के हमाजहत पहलू :	135
ख़ुद इल्म व अमल का नमूना	135
इबादत	135
ख़ुदा का ख़ौफ़	136
फ़ैयाज़ी (दानशीलता)	137
ख़ुद्दारी	138
अल्लाह पर भरोसा और सन्तोष	139
माफ़ी और दरगुज़र से काम लेना	140
हिम्मत और दिलेरी	140

परदा 141
वकालत 142
दूसरे ज्ञान-विज्ञान: 148
चिकित्सा-विज्ञान 148
इतिहास 149
शाइरी व अदब (साहित्य) 150
शाइरी की कला 152
औरतों के लिए बेहतरीन नमूना 158

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह के नाम से जो रहम करनेवाला और बड़ा मेहरबान है'

उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा सिद्दीक़ा (रज़ि.)

हज़रत आइशा (रज़ि.) इस्लाम के सबसे पहले ख़लीफ़ा हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) की छोटी बेटी थीं। इस्लामी इतिहास में जिस तरह हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) सबसे ज़्यादा मशहूर हैं उसी तरह हज़रत आइशा (रज़ि.) मुसलमान औरतों में सबसे ज़्यादा नुमायाँ हैं, और हज़रत आइशा (रज़ि.) का यह परिचय भी कितना शानदार है कि वे अल्लाह के आख़िरी नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) की प्यारी बीवी थीं और यह कि अल्लाह तआला ने नबी (सल्ल.) की बीवियों को उम्महातुल मोमिनीन (मुसलमानों की माएँ) कहा है। इस इरशाद के मुताबिक़ हज़रत आइशा (रज़ि.) उम्मुल मोमिनीन (मुसलमानों की माँ) हैं।

हज़रत आइशा (रज़ि.) को उम्मुल मोमिनीन तो अल्लाह तआला की तरफ़ से ख़िताब (उपाधि) मिला। बाप (सिद्दीक़) से निसबत होने की वजह से 'सिद्दीक़ा' के नाम से मशहूर हुईं। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को नबी (सल्ल.) ने सिद्दीक़ कहा और बेटी को बिन्तुस-सिद्दीक़ (अर्थात सिद्दीक़ की बेटी)। जब तक अल्लाह की ओर से उम्मुल मोमिनीन का ख़िताब नहीं मिला था, लोग आपको उम्मे-अब्दुल्लाह कहकर पुकारते थे। उम्मे-अब्दुल्लाह आपकी कुन्नियत (उपनाम) थी। अपनी यह कुन्नियत उन्होंने नबी (सल्ल.) के मशविरे से रखी थी। मशविरे की ज़रूरत इसलिए पड़ गई थी कि हज़रत आइशा (रज़ि.) की कोई औलाद नहीं थी और अरब में अबू-फ़लाँ और उम्मे फ़लाँ का आम चलन था। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने नबी (सल्ल.) से पूछा कि आपकी सब बीवियों ने अपनी औलाद के नाम पर अपनी-अपनी कुन्नियत रख ली है। मैं अपनी कुन्नियत किसके नाम पर रखूँ? नबी (सल्ल.) ने जवाब दिया, "अपने भाँजे अब्दुल्लाह के नाम पर।"

हज़रत अब्दुल्लाह, हज़रत आइशा (रज़ि.) की बड़ी बहन हज़रत असमा (रज़ि.) के बड़े बेटे थे। चूँकि इस्लाम में ख़ाला (मौसी) को तक़रीबन माँ के बराबर माना गया है, इसलिए नबी (सल्ल.) ने यह मशविरा दिया। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने इस मशविरे को क़बूल कर लिया और उम्मे-अब्दुल्लाह कुन्नियत रख ली। हज़रत आइशा (रज़ि.) का यह परिचय भी कितना रश्क के क़ाबिल है कि उनके ख़ानदान के हर व्यक्ति को सहाबी और हर औरत को सहाबिया होने का सौभाग्य प्राप्त है। यह वह सौभाग्य और श्रेय है कि इंसानों में अल्लाह के नबियों के बाद इससे उच्च कोई पद नहीं। इस पहलू से देखिए–

- हज़रत आइशा (रज़ि.) के दादा हज़रत अबू क़हाफ़ा (रज़ि.) सहाबी।
- हज़रत आइशा (रज़ि.) के बाप हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) सहाबी।
- हज़रत आइशा (रज़ि.) की माँ हज़रत उम्मे-रूमान (रज़ि.) सहाबिया।
- हज़रत आइशा (रज़ि.) के भाई हज़रत अब्दुर्रहमान (रज़ि.) सहाबी।
- हज़रत आइशा (रज़ि.) की बहन हज़रत असमा (रज़ि.) सहाबिया।

हमें सहाबा किराम (रज़ि.) में कोई ऐसा ख़ानदान नहीं मिला जिसमें यह ख़ास ख़ूबी पाई जाती हो। हज़रत आइशा (रज़ि.) ख़ुद कहती हैं कि जब से मैंने अपने माँ-बाप को पहचाना उन्हें मुसलमान ही पाया। दादा मक्का-विजय के समय मुसलमान हुए और सहाबा में गिने गए।

बचपन

''होनहार बिरवा के होत चिकने पात''

यह एक कहावत है। जब किसी बच्चे को देखकर यह अन्दाज़ा होता है कि वह बड़ा होकर कुछ बनेगा तो ऐसे अवसर पर यह कहावत कही जाती है। मतलब यह है कि होनहार बच्चे में बचपन ही से ऐसी ख़ूबियाँ दिखाई देने लगती हैं जो बताती हैं कि वह बड़ा होकर एक बड़ी शख़्सियत बनेगा। ऐसा बच्चा कुछ तो अपने चेहरे-मोहरे से पहचाना जाता है, कुछ अपनी आदतों से। उसके चलने-फिरने, खेलने-कूदने, बातें करने के अन्दाज़ से और ऐसी ही दूसरी बातों से लोग उसके बारे में एक राय बना लेते हैं। हज़रत आइशा (रज़ि.) बचपन में इस कहावत का जीता-जगता नमूना थीं। ज़रा उनके बचपन के कुछ नमूने देखिए–

रूप-रंग

चेहरे का रंग-रूप गोरा था। बचपन ही से उनके मुख पर प्रसन्नता और सौन्दर्य की आभा खेल रही थी। शरीर इकहरा था और बहुत फुर्तीली थीं। लोग उन्हें देखते ही कह उठते कि – ''यह तो हुमैरा है।'' अरबी भाषा में हुमैरा उस लड़की को कहते हैं जो रंग-रूप की गोरी-चिट्टी और शरीर की इकहरी और फुर्तीली होती है। हज़रत आइशा (रज़ि.) थीं तो दुबले-पतले शरीर की लेकिन जैसे-जैसे उम्र ज़्यादा होती गई वह मोटी और सेहतमन्द होती गईं।

खेल, मशग़ले और सूझ-बूझ

हज़रत आइशा (रज़ि.) बचपन में खेल की शौक़ीन थी। उनकी उम्र की लड़कियों का एक ग्रुप था। वे उन्हें बुलातीं और उनके साथ तरह-तरह के खेल खेला करतीं। लड़कियाँ उनके साथ खेलने में रूठती नहीं थीं। वे सबको ख़ुश रखतीं। इस तरह वे खेलनेवाली लड़कियों में एक लीडर की तरह नज़र आती थीं। ख़ास बात यह थी कि खेल में भी वे अदब और तहज़ीब का ख़याल रखती थीं। उनके बाप हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) इस्लाम के रहनुमा और पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) के सच्चे साथी थे और इस्लामी आंदोलन में प्यारे नबी

(सल्ल.) के क़दम से क़दम मिलाकर चल रहे थे। इस वजह से अकसर ऐसा होता कि नबी (सल्ल.) ख़ुद अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) के घर चले जाते। उस समय हज़रत आइशा (रज़ि.) अगर लड़कियों के साथ खेल में लगी होतीं तो आप (सल्ल.) को देखकर अदब से खड़ी हो जातीं। उनको देखकर सब लड़कियाँ खेल से रुक जातीं या फिर संजीदगी से खेलने लगतीं। कभी-कभी ऐसा भी होता कि लड़कियाँ नबी (सल्ल.) को देखकर छिप जातीं तो नबी (सल्ल.) सबको बुलाते और कहते कि आइशा के साथ खेलो।

हज़रत आइशा (रज़ि.) को झूला झूलना सब खेलों से ज़्यादा पसन्द था और मशग़ूलों में गुड़ियों से बहुत ज़्यादा दिलचस्पी थी। वे गुड़ियाँ ख़ुद तैयार करती थीं। तरह-तरह की नई-नई गुड़ियाँ बनाती थीं। इस नएपन में अगरचे उनका बचपना भी झलकता लेकिन इस नएपन के पीछे कोई न कोई बात ज़रूर होती और वह बात भी मक़सद से ख़ाली न होती और इससे उनकी अक़्लमन्दी का पता चलता था। इस सिलसिले में एक बड़ी ही दिलचस्प बात सुनिए। एक बार हज़रत आइशा (रज़ि.) गुड़ियों से खेल रही थीं। इतने में नबी (सल्ल.) पहुँच गए। आपने देखा कि गुड़ियों में एक घोड़ा भी रखा है और उसके पंख लगे हैं। आप (सल्ल.) ने पूछा, "आइशा! ये पंख कैसे?" हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जवाब दिया, "हज़रत सुलैमान (अलै.) के घोड़ों के भी तो पंख थे।" नबी (सल्ल.) इस हाज़िर जवाबी पर मुस्करा दिए।

इस जवाब से अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि हज़रत आइशा (रज़ि.) कितनी ज़्यादा समझदार थीं और जवाब देने में उनके अन्दर कितनी तत्परता थी। इस जवाब से यह भी पता चलता है कि उनके माँ-बाप उन्हें नबियों के क़िस्से सुनाया करते थे और वे उन्हें याद रखती थीं। फिर शायद अपनी ओर से मासूमियत भरा नयापन भी पैदा कर लिया करती थीं, जैसा कि इस जवाब में हज़रत सुलैमान (अलै.) के घोड़ों के पंखों के बारे में मौजूद है।

अल्लाह तआला ने याद रखने की ताक़त भी हज़रत आइशा (रज़ि.) को इतनी ज़्यादा दी थी कि बचपन की बातें भी ज़िन्दगी भर उन्हें याद रहीं। हाल यह था कि खेल रही हैं और उसी हालत में बाप या माँ से क़ुरआन मजीद की कोई आयत सुन ली तो झट याद कर ली और फिर वह कभी नहीं भूलीं। उसका

मतलब भी समझ लिया और याद रखा। वे ख़ुद कहती हैं कि मक्का में जब यह आयत "नहीं, बल्कि वह घड़ी है जिसका समय उनके लिए नियत है और वह बड़ी आपदावाली और ज़्यादा कड़वी घड़ी है" (क़ुरआन, 54:46) उतरी तो उस समय मैं खेल रही थी।

इस तरह की और बहुत-सी बातें हैं जिनसे पता चलता है कि हज़रत आइशा (रज़ि.) बचपन ही से बहुत ज़हीन और अक़्लमन्द थीं और याददाश्त उनकी बहुत अच्छी थी। हम इस सिलसिले की तफ़सीली बातें मौक़ा आने पर बयान करेंगे। इस वक़्त इतनी बात और जान लीजिए कि जिस वक़्त नबी (सल्ल.) और हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ने मक्का से मदीना को हिजरत की थी उस वक़्त हज़रत आइशा (रज़ि.) को हिजरत की एक-एक बात याद रही। उन्होंने जो देखा वह सब उन्हें याद रहा और माँ-बाप से जो सुना उसे याद रखा।

हज़रत आइशा (रज़ि.) पर यह अल्लाह की मेहरबानी और रहमत थी कि उनको ऐसा तेज़ दिमाग़ मिला। यह भी कहा जा सकता है कि अल्लाह तआला उन्हें अपने नबी की जीवन-साथी बनाने के लिए तैयार कर रहा था कि जब वे उम्मुल मोमिनीन बनें तो नबी (सल्ल.) की एक-एक बात को याद कर लें और ज़रूरत के वक़्त उम्मत तक पहुँचाएँ। इसी लिए हदीस की किताबों में हम देखते हैं कि बहुत-सी बातें ऐसी हैं कि अगर हज़रत आइशा (रज़ि.) उम्मुल मोमिनीन न बनतीं तो मुस्लिम उम्मत (समुदाय) उन बातों से महरूम रह जाती और दीन की वे हिक्मत भरी बातें हम तक नहीं पहुँचतीं और यदि पहुँचतीं भी तो उनका समझना तक मुश्किल हो जाता, उनपर अमल करना तो दूर की बात है। इस तरह एक ओर तो उम्मुल मोमिनीन को पाकर हम अल्लाह का शुक्र भी अदा करते हैं और दूसरी ओर यह गर्व करते हैं कि इस्लामी इतिहास में वे एक ऐसी इज़्ज़तवाली औरत हैं जिनकी तरह कोई और ढूँढे नहीं मिल सकता। हो सकता है कि किसी ख़ास ख़ूबी में कोई औरत उनसे आगे हो, लेकिन सामूहिक हैसियत से हज़रत आइशा (रज़ि.) की जैसी ख़ूबियाँ और क़ाबिलियतें दुनिया की दूसरी औरतों में नहीं मिलतीं। यही वजह है कि हम औरतों के लिए अगर कोई मुकम्मल और मिसाली नमूना पेश कर सकते हैं तो वह नमूना हमारी इज़्ज़तवाली और बुज़ुर्ग माँ, हज़रत आइशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) हैं।

शादी

नबी (सल्ल.) की पहली शादी हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) से हुई थी। उस वक़्त नबी (सल्ल.) की उम्र 25 साल थी और हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) चालीस साल की थीं। फिर जब हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) नबी हुए तो आप (सल्ल.) की उम्र चालीस साल की थी और हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) की उम्र पचपन साल की। नबी होने के बाद मक्का के क़ुरैश क़बीले के सरदारों ने नबी (सल्ल.) को किस-किस तरह से सताया यह सब हम और आप किताबों में पढ़ते हैं। उस वक़्त का एक नक़्शा यह भी हमारे सामने आता है कि हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) आपकी मुसीबतों में आपका साथ देती थीं। नबी (सल्ल.) पर अपना माल और अपनी जान न्यौछावर करने के लिए तैयार रहती थीं, यहाँ तक कि वे पैंसठ साल की हो गईं और नबी (सल्ल.) पचास साल के। इस उम्र और मुख़ालिफ़त के तूफ़ान में हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) जैसी जान न्यौछावर करनेवाली बीवी का इन्तिक़ाल हो गया और साथ ही चचा अबू तालिब भी चल बसे। चचा अबू तालिब भी नबी (सल्ल.) से बेहद मुहब्बत करते थे और परेशानियों में आपकी मदद भी करते थे। असर और प्रभाव रखनेवाले लोगों में सिर्फ़ हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ही रह गए जो दुश्मनों के मुक़ाबले में ढाल बने रहे। लेकिन जो घाव बीवी की जुदाई से लगा उसकी भरपाई वे भी नहीं कर सकते थे। नबी (सल्ल.) अकसर दुखी रहते। सहाबा और सहाबियात सब आप (सल्ल.) की हालत को देखते और आप (सल्ल.) के दिल बहलाने की तदबीरें सोचा करते। उन्हीं दिनों में नबी (सल्ल.) ने एक सपना देखा। सपने में आप (सल्ल.) ने देखा कि एक फ़रिश्ता रेशमी कपड़े में लिपटी हुई कोई चीज़ आपको पेश कर रहा है। आप (सल्ल.) ने उससे पूछा– "इसमें क्या है?" फ़रिश्ता बोला, "यह आपकी बीवी हैं।" आपने कपड़ा खोलकर देखा तो उसमें हज़रत आइशा (रज़ि.) थीं।

नबी (सल्ल.) के रिश्तेदारों में एक मशहूर सहाबी हज़रत उसमान बिन मज़ऊन (रज़ि.) थे। उनकी बीवी का नाम ख़ौला बिन्त हुकैम था। एक दिन वह नबी (सल्ल.) की ख़िदमत में आईं और अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल!

आप दूसरी शादी कर लें।'' आप (सल्ल.) ने पूछ, ''किस से ?'' बोलीं, ''बेवा और कुँवारी दोनों तरह की हैं। आप चाहें तो बेवा से कर लें और चाहें तो कुँवारी से।'' आप (सल्ल.) ने फिर पूछा, ''वे कौन हैं?'' हज़रत ख़ौला (रज़ि.) ने जवाब दिया, ''बेवा तो सौदा बिन्त ज़मआ (रज़ि.) हैं और कुँवारी आपके दोस्त अबू बक्र की बेटी आइशा।''

नबी (सल्ल.) ने हज़रत ख़ौला (रज़ि.) से कहा कि फिर तुम ही बात करो। हज़रत ख़ौला (रज़ि.) ने रिश्ते की बात की। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने रिश्ता क़बूल कर लिया और हज़रत आइशा (रज़ि.) की शादी नबी (सल्ल.) से कर दी।

हज़रत आइशा (रज़ि.) की शादी बड़ी सादगी से हुई। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने निकाह पढ़ाया। एक मुनासिब रक़म महर मुक़र्रर हुआ और बस।

आजकल हम मुसलमान अपनी और अपने भाई-बहनों और बेटों- बेटियों की शादियाँ करते हैं तो हमारे यहाँ शादी की जो धूमधाम होती है वह किसी से छिपी नहीं है। सिर्फ़ दिखावे और शानो-शौकत के लिए हैसियत न होते हुए भी हज़ारों-लाखों का महर तय किया जाता है। हज़ारों का सामान दहेज में दिया जाता है। इसके अलावा मँगनी और दूसरी रस्मों में जो कुछ ख़र्च होता है उससे चाहे दिवाला निकल जाए, लेकिन घर फूँककर करते वही हैं जिसपर बाद में सब रोते हैं, मगर फिर जब यह मौक़ा आता है तो फिर वही करते हैं।

अगर हम यह सब धूमधाम नाम और नाक ऊँची करने के लिए करते हैं तो इसका जवाब हमें ज़रूर सोचना चाहिए कि क्या हम और हमारी लड़कियाँ नबी (सल्ल.) और हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) और उम्मुल मेमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) से ज़्यादा इज़्ज़तवाली हैं ?

और अगर हम दामाद की ख़ुशी के लिए यह सब करते हैं तो क्या हमारा दामाद इतना ऊँचे दर्जे और मरतबेवाला है कि उसके लिए दीन के ख़िलाफ़ रस्में अदा करके अपने को तबाह कर दें? और अगर हम यह सब करने के लिए मजबूर हैं तो हम सब के सब मजबूर यह क्यों नहीं करते कि मिलकर बैठें और सादगी से शरीअत के मुताबिक़ शादियाँ करने लगें। क्या सादगी से शादी करने

के लिए हज़रत आइशा (रज़ि.) की शादी से हमें कोई नमूना नहीं मिलता ? अगर मिलता है और हम उसके मुताबिक़ अमल नहीं करते हैं तो फिर अपने ईमान की ख़ैर मनाएँ, और फिर ऐसी शादियों में अपने को तबाह करके रोएँ नहीं। "ख़ुद करदा रा इलाजे नीस्त" (जो बीमारी ख़ुद ही पाली है उसका इलाज किसी के पास नहीं), यह अच्छी तरह याद रखना चाहिए।

विदाई

शादी के बाद तीन साल हज़रत आइशा (रज़ि.) मायके ही में रहीं। तीसरे साल जब नबी (सल्ल.) हिजरत कर के मदीना गए तो इधर आप (सल्ल.) ने अपने बच्चों और हज़रत सौदा (रज़ि.) को लाने के लिए अपना आदमी भेजा, उधर हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ने भी अपने बीवी-बच्चों को लाने के लिए अपना आदमी मक्का भेजा। नबी (सल्ल.) की बेटियों में हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.), हज़रत उम्मे कुलसूम (रज़ि.) हज़रत सौदा (रज़ि.) के साथ आईं और हज़रत आइशा (रज़ि.) अपनी माँ, हज़रत उम्मे रूमान के साथ।

हज़रत आइशा मदीना आईं तो बाप के घर उतरीं। मदीना की आबो-हवा मुवाफ़िक़ न होने से बीमार हो गईं, ऐसी बीमार हुईं कि सिर के बाल झड़ गए। फिर जब अच्छी हुईं तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने नबी (सल्ल.) से अर्ज़ किया कि "ऐ अल्लाह के रसूल! आप अपनी बीवी को विदा करके अपने घर ले आइए।" आप (सल्ल.) ने जवाब दिया, "मेरे पास महर में देने के लिए रूपये नहीं हैं।" हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने यह सुनकर अपने पास से रूपये दिए। रूपये हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास भिजवा दिए गए और हज़रत आइशा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के घर आ गईं।

ज़रा ठहरकर फिर सोचिए, क्या हम अपने नबी की पैरवी करते हैं ? क्या आज हम बीवी को महर की रक़म अदा करते हैं ? यदि नहीं तो किस मुँह से कहते हैं कि हम अल्लाह के आख़िरी नबी की उम्मत में हैं। लेकिन जब हम अपने को नबी (सल्ल.) का उम्मती कहते हैं तो हमें यह सब भी याद रखना चाहिए।

जिस दिन हज़रत आइशा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के घर गईं तो उनकी

ख़ातिरदारी किस तरह की गई इसका दिलचस्प क़िस्सा भी सुन लीजिए –

हज़रत असमा बिन्त यज़ीद (रज़ि.) कहती हैं कि जिस वक़्त आइशा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के घर आईं उस समय मैं वहाँ मौजूद थी। नबी (सल्ल.) के घर में उस समय एक प्याला दूध था। आप (सल्ल.) ने थोड़ा-सा दूध पिया और प्याला हज़रत आइशा (रज़ि.) की ओर बढ़ा दिया। वे शर्माने लगीं तो मैंने कहा, "अल्लाह के रसूल का तोहफ़ा वापस न करो।" उन्होंने शर्माते हुए प्याला ले लिया। थोड़ा-सा दूध पिया और प्याला रख दिया। आप (सल्ल.) ने कहा कि अपनी सहेलियों को दो। सहेलियों ने कहा, " ऐ अल्लाह के रसूल! हमें भूख नहीं है!" आप (सल्ल.) ने कहा, "झूठ न बोलो! आदमी का एक-एक झूठ लिखा जाता है।"

हज़रत आइशा (रज़ि.) की शादी के मौक़े पर अरब की तीन बुरी रस्में तोड़ी गईं।

1. अरब के लोग शव्वाल के महीने में न शादी करते और न विदाई। हज़रत आइशा (रज़ि.) की शादी भी शव्वाल में हुई और विदाई भी शव्वाल ही में हुई। अरबों के अक़ीदे में शव्वाल का महीना मनहूस (अशुभ) था। इस्लाम ने बताया कि कोई महीना मनहूस नहीं है।

2. अरब में मुँह बोले भाई की बेटी से शादी नाजाइज़ थी। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के मुँह बोले भाई थे। हज़रत आइशा (रज़ि.) की शादी इस बात का सुबूत है कि मुँह बोले भाई की लड़की से शादी जाइज़ है।

3. अरब में रस्म थी कि जब दुल्हन विदा होकर शौहर के घर जाती थी तो आगे आग जलाते थे। इस रस्म के पीछे तरह-तरह के अंधविश्वास थे। हज़रत आइशा (रज़ि.) की शादी में यह रस्म भी टूटी।

हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि मेरी शादी में यह कुछ नहीं हुआ, फिर भी मैं ही सबसे ज़्यादा क़िस्मतवाली साबित हुई। एक भी अशुभ कही जानेवाली बात ने मुझे नुक़सान नहीं पहुँचाया। अल्लाह का शुक्र है।

तालीम और तरबियत

तालीम का मतलब आम तौर से यह समझ लिया गया है कि पढ़ना-लिखना सीख लिया जाए। तालीम का मतलब पढ़ना-लिखना सीख लेना नहीं, बल्कि इसका मतलब यह है कि जो बात न मालूम हो उसे जान लिया जाए। पढ़ना-लिखना तो इल्म हासिल करने का एक ज़रिया है वरना इल्म पढ़ना-लिखना सीखे बिना भी हासिल हो सकता है और हासिल किया भी जाता है। हम और आप देखते हैं कि एक अनपढ़ बढ़ई जो एक कुर्सी बनाता है वह पढ़ना-लिखना नहीं जानता है लेकिन कुर्सी बनाना जानता है, और आपके सामने बनाकर तैयार भी कर देता है। इसी तरह एक अनपढ़ दर्ज़ी कपड़ा काटना और सीना जानता है और काटकर तैयार भी कर देता है।

यह मिसाल तो थी पेशों के बारे में। अब अपने घर में देखिए – एक अनपढ़ माँ भी अपने बच्चों की देखभाल और परवरिश करने के तरीक़ों को जानती है। अपनी बेटियों और बहनों को बताती और सिखाती भी है और वह यह सब ज़बानी ही बताती है। बहुत-सी अनपढ़ लड़कियाँ ज़बानी ही बहुत-सी घरेलू बातें सीख लेती हैं।

पढ़ना-लिखना सीखने से फ़ायदा यह होता है कि वही बातें जो ज़बानी तौर पर जानी और सीखी जाती हैं वे लिख ली जाती हैं तो बहुत दिनों तक पढ़े-लिखे लोग उनसे फ़ायदा उठाते रहते हैं। जो बातें ज़बानी बताई जाती हैं उनको आदमी भूल भी जाता है। भूलते-भूलते ज़बानी सीखी हुई बातें दुनिया से बिल्कुल ही मिट जाती हैं। लेकिन लिखी हुई बातों की उम्र बहुत ज़्यादा होती है और वे एक ज़बान से दूसरी ज़बान के साँचे में ढलकर दूसरी क़ौमों और दूसरे देशों में पहुँचती हैं तो वहाँ के लोग भी उनसे वही बात सीखते हैं।

फिर यह कि पढ़े-लिखे लोग पुरानी किताबों से फ़ायदा उठाकर और उसमें कुछ अपना इल्म और जानकारी शामिल करके हर ज़माने में लिखते रहते हैं। इस तरह इल्म आगे बढ़ता और तरक़्क़ी करता रहता है। फिर एक दिन आता है जब

एक पढ़ा-लिखा आदमी किसी न किसी इल्म पर बड़ी किताब तैयार कर देता है। हम और आप जो कलाएँ और उन के माहिरों को देखते हैं, ये एक दिन के इल्म में ऐसे नहीं बने, बल्कि ये आज जिस शक्ल में हैं ये हज़ारों साल के अनुभवों की बातें हैं जिनको लगातार लिखा जाता रहा और आज वे एक फ़न (कला) बन गए। यह सब पढ़ने-लिखने का चमत्कार है।

पढ़ने-लिखने की अहमियत नबी (सल्ल.) के सामने भी रही। याद होगा कि बद्र की लड़ाई में नबी (सल्ल.) को जीत हासिल हुई और दुश्मनों के बहुत-से लोग क़ैदी होकर आए तो उनमें जो लोग पढ़े-लिखे थे, उनसे नबी (सल्ल.) ने कहा कि तुममें हर एक दस-दस मुसलमानों को पढ़ना-लिखना सिखा दे तो उसे छोड़ दिया जाएगा। इस तरह बहुत-से मुसलमानों ने पढ़ना-लिखना सीख लिया था।

प्राचीन अरबों का स्वभाव

नबी (सल्ल.) से पहले – जिसे अज्ञानता का ज़माना कहा जाता है – के ज़माने में अरबों का स्वभाव और मिज़ाज यह था कि वे अपनी याददाश्त पर बहुत गर्व करते थे। पीढ़ियों की बातें ज़बानी याद करते और याद रखते थे। याद रखने की उनकी क़ुव्वत का हाल यह था कि अपने ऊँटों की वंशावली तक याद रखते थे। यानी इस ऊँट का बाप वह ऊँट था, उस ऊँट का बाप फ़लाँ और दादा फ़लाँ था वग़ैरह । इसी तरह वे अपनी ख़ानदानी वंशावली भी याद रखते थे। शेरो-शायरी का भी यही हाल था। अरब के लोग बड़े गर्व के साथ कहा करते थे कि लिखते वे लोग हैं जिनकी याददाश्त कमज़ोर होती है। यहाँ यह बयान कर देना ग़ैर-मुनासिब न होगा कि अल्लाह तआला ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) को अरब में नबी बनाया तो इसमें एक हिकमत यह भी थी कि अरब के लोग क़ुरआन याद कर लें और नबी (सल्ल.) के हालात भी सुरक्षित कर लें, ताकि आनेवाले लोगों में ठीक-ठीक दीन का इल्म पहुँच सके।

जब नबी (सल्ल.) ने मक्का में दीन इस्लाम की दावत देनी शुरू की थी उस समय मक्का में सिर्फ़ 17 आदमी पढ़ना-लिखना जानते थे। उन 17 आदमियों में एक औरत शिफ़ा बिन्त अब्दुल्लाह अदविया भी थीं। अरबों को

इस्लाम की तबलीग़ से यह बरकत भी हासिल हुई कि वे पढ़ना-लिखना सीखने लगे और अपने-अपने स्वभाव और पसन्द के मुताबिक़ ख़ानदानी वंशावली, जानवरों की वंशावली, शेर-क़सीदे वग़ैरह लिखे जाने लगे। नबी (सल्ल.) पर क़ुरआन की जो आयतें नाज़िल होतीं, आप (सल्ल.) पढ़े-लिखे सहाबा (रज़ि.) को लिखवा देते। कुछ पढ़े-लिखे सहाबी (रज़ि.) क़ुरआन के अलावा जो कुछ नबी (सल्ल.) को करते देखते, वह भी लिखते रहते। इस तरह क़ुरआन के अलावा हदीसें भी लिखी जाने लगीं। एक बार नबी (सल्ल.) ने हदीसें लिखने से रोका भी था। अंदेशा यह था कि कहीं हदीसें क़ुरआन की आयतों के साथ गड-मड न हो जाएँ। फिर जब यह अंदेशा जाता रहा तो आप (सल्ल.) ने हदीसें लिखने की इजाज़त दे दी।

अल-इल्म का अर्थ

इल्म का अर्थ तो उन सारे पेशों को सीखने का है जो दुनिया में फैले हुए हैं, जैसे डॉक्टरी का इल्म, इमारत बनाने का इल्म (इंजीनियरिंग), अदब या साहित्य (शाइरी और मज़मून लिखने का इल्म), तारीख़ (इतिहास) का इल्म (पुरानी क़ौमों के उत्थान और पतन का इल्म), मईशत का इल्म (अर्थ-व्यवस्था का ज्ञान), रहन-सहन का इल्म, शहरी ज़िंदगी का इल्म (सामाजिक- ज्ञान), तिजारत (व्यापार) करने का इल्म, कपड़ा सीने का इल्म, खाने-पकाने का इल्म, सीने-पिरोने का इल्म, काढ़ने का इल्म और बहुत-से इल्म हैं जिनपर बड़ी-बड़ी किताबें लिखी जा चुकी हैं। हमारे देखते-देखते नफ़सियात (मनोविज्ञान) के इल्म ने जन्म लिया और वह भी अच्छा-ख़ासा फ़न बन गया। ये सब हैं उलूम (बहुत सारे इल्म)।

इन सारे उलूम से अलग एक इल्म है 'अल-इल्म' यानी वह ख़ास इल्म जिसको अल्लाह के नबियों ने दुनिया में फैलाया और जिसे अल्लाह के आख़िरी नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) ने पूरे का पूरा दुनिया को दिया। इस इल्म से मुराद अल्लाह के दीन का इल्म है। अल्लाह और बन्दे का क्या सबन्ध है? अल्लाह को मानने और अल्लाह के बारे में जानने की बुनियादी बातें क्या हैं? अल्लाह के रसूलों के बारे में हमें क्या जानना और मानना चाहिए? यह यक़ीन कि यह दुनिया हमेशा रहेगी या एक दिन ख़त्म हो जाएगी और फिर एक दिन ज़िन्दगी मिलेगी

जिसमें इस दुनिया में किए हुए कामों का अच्छा और बुरा बदला मिलेगा? एक इंसान के लिए हराम क्या है? हलाल क्या है? अच्छी-बुरी बातें क्या हैं? पाक और नापाक चीज़े क्या-क्या हैं?

इस 'ख़ास इल्म' की बुनियादी बातें जानना हर मुसलमान की ज़िम्मेदारी है। हर मुसलमान की ज़िम्मेदारी है कि वह यह ख़ास इल्म अपने बाल-बच्चों को भी सिखाए। रहीं वे बातें जो इस 'इल्म' की तफ़सील के बारे में हों जैसे फ़िक़्ह (मसले-मसाइल की बातें), तो फ़िक़्ह की बातें दूसरों को बताना आलिमों की ज़िम्मेदारी है।

बचपन में इल्म

इस ख़ास इल्म (अल-इल्म) की बुनियादी बातें सीखने के लिए बचपने का ज़ेहन और दिमाग़ बड़े काम का होता है। बच्चों की याददाश्त अच्छी होती है। इस उम्र में उनको जो कुछ याद कराया जाता है वे जल्द याद कर लेते हैं और फिर इस उम्र का याद किया हुआ और सीखा हुआ हमेशा याद रहता है और काम आता है, चाहे वह ज़बानी बताया जाए या पढ़ने-लिखने के ज़रिये सिखाया जाए। पेशों का इल्म भी बचपन से सिखाया जाए तो वह आगे सीखने के लिए बुनियाद का काम करता है। इसी लिए दुनिया की हर क़ौम अपने बच्चों को जो इल्म सिखाना चाहती है उन्हें बचपन ही से सिखाना शुरू कर देती है, चाहे वह दीन का इल्म हो या दुनिया का इल्म।

हज़रत आइशा (रज़ि.) की ख़ुशनसीबी

तमाम उम्महातुल मोमिनीन (नबी सल्ल. की बीवियों) में हज़रत आइशा (रज़ि.) वे ख़ुशक़िस्मत उम्मुल मोमिनीन हैं जो कम उम्र में ही नबी (सल्ल.) से ब्याही गईं। हज़रत आइशा (रज़ि.) के अलावा तमाम उम्महातुल- मोमिनीन बेवा ही थीं और फिर नबी (सल्ल.) के निकाह में आईं। हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) जब नबी (सल्ल.) के निकाह में आईं तो उनकी उम्र चालीस साल थी और नबी (सल्ल.) की उम्र पच्चीस साल। उस वक़्त नबी (सल्ल.) को नुबूवत नहीं मिली थी। उस शादी के पन्द्रह साल बाद आप (सल्ल.) को अल्लाह ने नुबूवत दी और आप नबी बने। उस वक़्त हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) पचपन साल की हो गई

थीं। उसके बाद दस साल के अन्दर उनका इन्तिक़ाल हो गया। हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) के नबी होने के पन्द्रह साल पहले और नबी होने के दस साल बाद तक हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) ने नबी (सल्ल.) को बहुत क़रीब से देखा। उनका पन्द्रह साल का तजुर्बा यह था कि मुहम्मद (सल्ल.) एक बेहतरीन और कामिल इंसान हैं। फिर जब मुहम्मद (सल्ल .) नबी हुए तो हज़रत ख़दीज़ा (रज़ि.) ने सबसे पहले इस्लाम क़बूल कर लिया और इस यक़ीन के साथ कि सचमुच हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) को नबी होना ही चाहिए, क्योंकि आप (सल्ल.) में वे सारी ख़ूबियाँ थी जो सिर्फ़ एक नबी में ही हो सकती हैं। इस्लाम क़बूल करने के बाद हज़रत ख़दीजा दस साल ज़िन्दा रहीं और इस्लाम पर क़ायम रहीं। आपने अपना माल इस्लाम को आगे बढ़ाने के लिए दिया। ख़ुद नबी (सल्ल.) की हिमायत और मदद में डटी रहीं। अपने बच्चों को नबी (सल्ल.) पर क़ुरबान करने के लिए तैयार किया। कठिन वक़्तों और सख़्त से सख़्त आज़माइशों में नबी (सल्ल.) का साथ दिया। सच्ची बात यह है कि इस त्याग और क़ुरबानी में नबी (सल्ल.) की कोई बीवी उनके बराबर नहीं। उनकी इन ख़िदमतों को नबी (सल्ल.) ज़िन्दगी भर नहीं भूले। ख़ुद हज़रत आइशा (रज़ि.) का बयान है कि नबी (सल्ल.) जब हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) का ज़िक्र करते तो इस तरह करते कि हमें रश्क होता था कि काश ! ये ख़िदमतें हमारे हिस्से में आतीं।

हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) की ज़िन्दगी त्याग और क़ुरबानी, ख़ुलूस व मुहब्बत और शौहर पर न्यौछावर होने का सबसे बड़ा नमूना है। लेकिन अगर एक मुसलमान औरत इसके बाद यह जानना चाहे कि – एक औरत के लिए और क्या बातें जानना ज़रूरी हैं और कौन-कौन सी बातें औरतों से सम्बन्धित हैं , दीन में औरत का क्या स्थान है, उसके क्या हक़ और अधिकार हैं ? ज़िन्दगी के हर मैदान में उसका क्या हिस्सा है ? अगर कोई दूसरी औरत उसकी सौतन बनकर आए तो उसके साथ कैसे निभाए ? सौतेली औलाद हो तो उसके साथ किस तरह पेश आए ? अगर ख़ुदा न करे उसपर कोई तोहमत (झूठा आरोप) लगाई जाए तो उस तोहमत का मुक़ाबला किस तरह किया जाए ? शौहर और समाज से औरत अपने अधिकार के लिए क्या जिद्दोजुहद करे ? (यह दूसरी बात है कि फिर शौहर की ख़ुशी के लिए अपने हक़ छोड़ दे) ? शौहर ख़ुश हो तो उससे किस तरह पेश

आए और शौहर नाराज़ हो जाए तो क्या करे ? बेवा हो जाए तो उसका किरदार और अमल क्या हो, रो-रोकर अपनी ज़िन्दगी गुज़ारे या शौहर के मिशन को आगे बढ़ाने में अपनी ज़िन्दगी खपा दे ? हुकूमत से हक़ व इंसाफ़ लेने में क्या रोल अदा करे ? अगर किसी मामले में ख़ुद अपनी बात ग़लत साबित हो तो किस ख़ूबी के साथ अपनी ग़लती माने और उसको क़बूल करे ?

ये और इस तरह की और बहुत-सी बातें हैं कि उनका नमूना हमें हज़रत आइशा (रज़ि.) ही की ज़िन्दगी में नज़र आता है। नबी (सल्ल.) ने उनको एक मुकम्मल बीवी बनाने के लिए शुरू ही से तालीम व तरबियत देनी शुरू कर दी थी। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने ख़ुद बढ़कर नबी (सल्ल.) से दीन का इल्म सीखा और जहाँ उन्होंने ग़लती की, नबी (सल्ल.) ने फ़ौरन टोका और रोका और कभी-कभी इस मामले में सख़्ती से भी काम लिया। हज़रत आइशा (रज़ि.) की ज़िन्दगी का यह हिस्सा भी नमूना है। ऐसा नमूना जो बेहद दिलकश और बेहतरीन भी है और नसीहतों से भरा हुआ भी। इसकी कुछ तफ़सील आगे आपके सामने आएगी।

मायके में

हज़रत आइशा (रज़ि.) जब समझदारी की उम्र को पहुँची तब तक उनके माँ-बाप मुसलमान हो चुके थे। यह वह ज़माना था जब नबी (सल्ल.) की मुख़ालफ़त और दुश्मनी में मक्का के सरदार पूरी ताक़त लगा रहे थे। हज़रत आइशा (रज़ि.) खुली आँखों से माँ-बाप को देखती थीं कि दोनों नबी (सल्ल.) और अल्लाह के दीन के लिए किस तरह अपना माल न्यौछावर कर रहे हैं और किस तरह नबी (सल्ल.) की हिमायत और मदद में जान की बाज़ी लगा देते हैं। माँ-बाप को घर में अल्लाह और रसूल की बातें करते सुनती थीं, और फिर माँ-बाप को उनपर पूरा अमल करते हुए भी पाती थीं। चुनांचे माँ-बाप का यह क़ौल व अमल (कथनी-करनी) देखते-देखते वे फ़ितरी तौर पर इस्लामी साँचे में ढलने लगीं।

ज़रा ठहरकर इस जगह हम अपनी औलाद की तरबियत के बारे में सोच लें तो हमें मालूम हो जाएगा कि हम अपनी औलाद की तरबियत में क्यों नाकाम हैं।

हम अपनी औलाद से कहते हैं कि सच बोलो, लेकिन ख़ुद झूठ बोलते हैं। हम अपनी औलद से कहते हैं कि गालियाँ मत दो, लेकिन ख़ुद गन्दी से गन्दी गालियाँ देते हुए नहीं शरमाते। हम अपने बच्चों से कहते हैं कि ख़ुदा से डरो, नमाज़ पढ़ो, क़ुरआन पढ़ने में दिल लगाओ, लेकिन हम ख़ुदा से नहीं डरते, नमाज़ नहीं पढ़ते और दौलत के लालच में ख़ुदा और नबी (सल्ल.) के आदेशों की परवाह नहीं करते। तो जब हमारे क़ौल व अमल में फ़र्क़ हो, 'ख़ुद रा फ़ज़ीहत और दीगराँ रा नसीहत' वाली कहावत हो, यानी दूसरों को तो नसीहत करें और ख़ुद उसपर अमल न करें तो फिर भला हमारी औलाद हमसे क्या नसीहत हासिल कर सकेगी और उसकी अच्छी तरबियत कैसे हो सकेगी। यह हज़रत आइशा (रज़ि.) की ख़ुशनसीबी थी कि उन्होंने माँ-बाप को इस्लाम का चलता-फिरता नमूना पाया।

शेरो-शाइरी और नसब का इल्म

हज़रत आइशा (रज़ि.) के वालिद हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) शेरो-शाइरी और नसब के इल्म के बहुत बड़े विद्वान थे। नसब के इल्म का मतलब वही है जिसे आजकल हम वंशावली कहते हैं। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने बेटी आइशा (रज़ि.) को क़ुरैश ख़ानदानों की वंशावली का इल्म ख़ुद दिया और अरबी शाइरी के चोटी के अशआर उनको याद कराए और उसकी बारीकियाँ समझाईं। उस वक़्त ये इल्म बड़े गर्व और ख़ास ख़ूबियों का दर्जा रखते थे। नबी (सल्ल.) ने उनसे ख़ुद भी फ़ायदा उठाया।

यह बात इस तरह है कि इस्लाम के दुश्मन क़ुरैशी शायर, नबी (सल्ल.) की बुराई में शेर कहते थे। यह बात नबी (सल्ल.) को और मुसलमानों को बुरी लगती थी। मुस्लिम शायर जवाबी हमले के लिए उठ खड़े हुए। उन्होंने क़ुरैशी सरदारों की बुराई में चोटी के शेर कहे और नबी (सल्ल.) को सुनाए। लेकिन एक ऐसी नज़ाकत थी जिसे निभाने के लिए निहायत ही महारत और कला की ज़रूरत थी। क्योंकि नबी (सल्ल.) ने उन शेरों को सुनकर फ़रमाया: "मैं भी तो क़ुरैशी हूँ।" (यानी इन शेरों की चोट मुझपर भी पड़ती है।) फिर आप (सल्ल.) ने मशहूर शायर हज़रत हस्सान बिन साबित (रज़ि.) की तरफ़ देखा। हज़रत

हस्सान (रज़ि.) नबी (सल्ल.) की नज़र को भाँप गए। अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैं आपको इनमें से इस तरह निकाल लूँगा जैसे एक औरत गुँधे हुए आटे में से बाल खींच लेती है।

यह सुनकर नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "हम सब में शेरो-शायरी और नसब के सबसे बड़े आलिम अबू बक्र हैं। तुम उनसे मशविरा करके शेर कहो।" हज़रत हस्सान (रज़ि.) ने हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) से मशविरा करके शेर कहना शुरू किया तो क़ुरैशी सरदार बौखला उठे और सबने कहा कि इस शाइरी के पीछे हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) बोल रहे हैं। हज़रत हस्सान (रज़ि.) ने अपनी शाइरी के ज़रिये जवाबी वार ही नहीं आक्रामक हमले करके क़ुरैशी शाइरों के शेरों की धज्जियाँ उड़ा दीं। आगे चलकर हम बताएँगे कि हज़रत आइशा (रज़ि.) ने इन शेरों को किस तरह याद रखा और ख़ुद उन्होंने हज़रत हस्सान (रज़ि.) का कितना ज़्यादा हौसला बढ़ाया।

तरबियत के बारे में हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) बहुत सख़्त थे। वे औलाद को जो नसीहत करते उसपर अमल भी कराते। अगर औलाद से भूलचूक हो जाती तो सज़ा भी देते थे। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के एक बेटे थे अब्दुर्रहमान बिन अबू बक्र (रज़ि.)। एक दिन हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के घर कुछ मेहमान आए। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने अब्दुर्रहमान से कहा कि मेहमानों को वक़्त पर खाना खिला देना। अब्दुर्रहमान को खाना देने में देर हो गई। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को मालूम हुआ कि मेहमानों को खाना देर से मिला तो बेटे को सज़ा देने के लिए तैयार हो गए।

हज़रत आइशा (रज़ि.) बचपन से अच्छी आदतोंवाली थीं और उन्होंने बड़ा तेज़ दिमाग़ पाया था, इसी लिए वे बाप की बहुत प्यारी थीं। लेकिन हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) की इस सख़्ती से वे भी नहीं बचीं। अपना घर तो अपना घर है, जब हज़रत आइशा (रज़ि.) की शादी नबी (सल्ल.) से हो गई तब भी हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने उन्हें नहीं बख़्शा। एक बार नबी (सल्ल.) के घर में हज़रत आइशा (रज़ि.) ने कोई ग़लती की तो सज़ा देने चले, लेकिन नबी (सल्ल.) ने बचा लिया।

ज़ाहिर है कि ऐसे बाप की बेटी को आगे चलकर कैसा बनना चाहिए था।और जब इसके साथ ख़ुद नबी (सल्ल.) की तालीम और तरबियत का तरीक़ा भी शामिल हो फिर तो हज़रत आइशा (रज़ि.) को ऐसा ही बनना चाहिए था।

आगे आप पढ़ेंगे कि हज़रत आइशा (रज़ि.) ने ख़ुद किस तरह आगे बढ़कर नबी (सल्ल.) से अल्लाह के दीन की बातें सीखीं।

तालीम व तरबियत का पूरा होना

हज़रत आइशा (रज़ि.) ने मक्का में अपने वालिद से जो कुछ सीखा वह अरब की रिवायतों (रस्मों व परम्पराओं) के मुताबिक़ अदब व शेर और ख़ानदानों के नसब की जानकारी के बारे में था। रही दीन के बारे में जानकारी तो चूँकि माँ-बाप दीनी तालीम का नमूना थे, जो कुछ अल्लाह की तरफ़ से नाज़िल होता और प्यारे नबी (सल्ल.) के ज़रिये हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) तक पहुँचता वे उसे ज़बान से फैलाना और उसपर अमल करना शुरू कर देते। उस उम्र में हज़रत आइशा (रज़ि.) यह सब देखतीं और फिर यह सब हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के किरदार की बदौलत उनके दिल पर नक़्श होता जाता। माँ-बाप का आलिम होना और उससे बढ़कर यह कि उस इल्म पर अमल करना उनकी औलाद के लिए बेहद फ़ायदेमन्द होता है। बच्चे घर में नमूना देखकर अपने आप बहुत कुछ सीख लेते हैं और अपने आप उसी साँचे में ढलने लगते हैं जिसमें माँ-बाप ढले होते हैं। यही हाल हज़रत आइशा (रज़ि.) का था। बेशक यह हज़रत आइशा (रज़ि.) की बहुत बड़ी ख़ुशनसीबी थी लेकिन इससे भी बढ़कर ख़ुशनसीबी यह थी कि वे नबी (सल्ल.) के निकाह में आईं। नबी (सल्ल.) ने उनके अन्दर छिपी क़ाबिलियत को परख लिया था। नबी (सल्ल.) ने उसी दिन से हज़रत आइशा (रज़ि.) की तरबियत शुरू कर दी जिस दिन हज़रत आइशा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के घर आईं। याद होगा जब नबी (सल्ल.) ने हज़रत आइशा (रज़ि.) को प्याले में दूध पीने के लिए दिया तो हज़रत आइशा (रज़ि.) ने थोड़ा-सा दूध पिया, बाक़ी रख दिया। नबी (सल्ल.) ने कहा कि अपनी सहेलियों को भी दो। सहेलियों ने कहा कि "ऐ अल्लाह के रसूल! हमें ख़ाहिश नहीं है।" नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया कि "झूट न बोलो, आदमी का एक-एक झूठ लिखा जाता है।" और यह बात हज़रत आइशा (रज़ि.) ने गिरह में बाँध

ली। उसके बाद ऐसा होता कि जो बात समझ में न आती, हज़रत आइशा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) से पूछतीं और जब तक अच्छी तरह समझ न लेतीं सवाल पर सवाल करती रहतीं और नबी (सल्ल.) उन्हें उस वक़्त तक समझाते रहते जब तक कि वे मुत्मइन न हो जातीं। यानी एक तरफ़ इल्म सीखने का शौक़ था तो दूसरी तरफ़ सिखाने का।

और यह सब कहाँ सीखा और सिखाया जाता था ? इसके लिए कोई ख़ास इमारत मदरसे या स्कूल की शक्ल में न थी जिसमें टाइम टेबल के मुताबिक़ विषयानुसार पढ़ाया जाता हो। यह जगह थी हज़रत आइशा (रज़ि.) का घर। ढाई-तीन वर्ग मीटर का एक छोटा-सा कमरा जो मस्जिदे-नबवी से मिला हुआ था और उसका दरवाज़ा भी मस्जिद की तरफ़ था, और जिसमें तालीम हासिल करने के लिए वक़्त तय न था बल्कि सारा वक़्त इसी के लिए था। नबी (सल्ल.) घर के अन्दर अपने क़ौल व अमल से दीन की बातें बताते और समझाते रहते और नमूने के तौर पर ख़ुद करके दिखाते रहते। हज़रत आइशा (रज़ि.) कुछ करती होतीं, बातों में लगी होतीं, किसी को कुछ देती होतीं, किसी से कुछ लेती होतीं वग़ैरह, सब नबी (सल्ल.) की नज़र में होता और नबी (सल्ल.) किसी बात पर टोकते ..... ऐसे नहीं ऐसे होना चाहिए ..... ग़लत यह है ..... इस लफ़्ज़ के मायने ये हैं और ..... अल्लाह का मक़सद इस लफ़्ज़ से यह है। हज़रत आइशा (रज़ि.) ये सब बातें सुनतीं, देखतीं, समझतीं और दिल में बिठाती रहतीं।

हज़रत आइशा (रज़ि.) के कमरे का दरवाज़ा मस्जिद की तरफ़ था इस लिए जिस वक़्त नबी (सल्ल.) मस्जिद में सहाबा (रज़ि.) को कुछ सिखाते होते, नसीहत करते होते या आने-जानेवालों से मुलाक़ातें करते होते, यह सब भी हज़रत आइशा (रज़ि.) देखती रहतीं और सबक़ हासिल करती रहतीं। इस तरह कई सालों तक यह सिलसिला चलता रहा। और अल्लाह तआला ने नबी (सल्ल.) पर अपना पूरा दीन भेज दिया। दीन को मुकम्मल कर दिया। यह आयत नाज़िल हुई –

"आज मैंने तुम्हारे लिए तुम्हारे दीन को मुकम्मल कर दिया.....।"

(क़ुरआन, 5:3)

इधर दीन मुकम्मल हुआ और उधर उम्महातुल मोमिनीन में से हज़रत आइशा (रज़ि.) ने भी दीन का पूरा इल्म हासिल कर लिया। यह आयत उतरी तो सहाबा (रज़ि.) बहुत ख़ुश हुए लेकिन हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) की आँखों में आँसू आ गए। लोगों ने हैरान होकर पूछा, "ऐ अबू बक्र! ये आँसू कैसे?" हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने जवाब दिया, "यह इशारा है कि अल्लाह के नबी (सल्ल.) ने अपना मिशन पूरा कर लिया, अब शायद जल्द ही अल्लाह तआला अपने नबी को बुला लेगा।"

यही हुआ, नबी (सल्ल.) बीमार हुए और अल्लाह को प्यारे हो गए। हज़रत आइशा (रज़ि.) बेवा हो गईं। फिर उन्होंने किस तरह अल्लाह के दीन और नबी (सल्ल.) के मिशन को आगे बढ़ाने में हिस्सा लिया यह बाद में अर्ज़ किया जाएगा। इस वक़्त नबी (सल्ल.) के तालीम व तरबियत देने के तरीक़े और हज़रत आइशा (रज़ि.) के तालीम व तरबियत हासिल करने के तरीक़े के कुछ नमूने बतौर मिसाल देखिए और सबक़ हासिल कीजिए। तालीम व तरबियत के हज़ारों तरीक़ों के नमूनों में से कुछ पेश किए जाते हैं –

इस्लामी तालीम में आख़िरत का अक़ीदा वह अक़ीदा है जिसका असर सीधा इंसान के अमल पर पड़ता है। आख़िरत के हिसाब के डर से इंसान उस वक़्त लरज़ जाता है जब उससे ग़लती होती है और तौबा करके फिर अल्लाह का फ़रमाँबरदार बन जाता है। यह आख़िरत के अक़ीदे का नतीजा है। अब सुनिए:

एक बार नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, " क़ियामत में जिससे हिसाब हुआ, उसपर अज़ाब हुआ।" ग़ौर कीजिए कि नबी (सल्ल.) ने कैसी डरावे की बात इरशाद फ़रमाई है। जिन लोगों की नज़र नबी (सल्ल.) के इरशाद पर गहरी नहीं वे कह सकते हैं कि हिसाब तो हर शख़्स से होगा। यहाँ तक कि अगर शहीद क़र्ज़दार होगा तो उसका भी। नबी (सल्ल.) मस्जिदे-नबवी से घर (हज़रत आइशा रज़ि.) के कमरे में आए तो हज़रत आइशा (रज़ि.) ने एक दलील के साथ कहा, "ऐ अल्लाह के नबी! क़ुरआन में अल्लाह तआला फ़रमाता है कि उससे आसान हिसाब लिया जाएगा, तो फिर ऐ अल्लाह के नबी आपने जो कहा है उसका क्या मतलब है ?"

नबी (सल्ल.) ने समझाया, "जिसके आमाल में जिरह शुरू हुई वह तो

बरबाद ही हुआ।'' ज़ाहिर है कि जिरह उसी के आमाल में होगी जिसमें खोट होगी, यानी यह कि उसने किस नीयत से अमल किया था।

सोचिए, अगर हज़रत आइशा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) से यह न पूछती तो आज उम्मत कैसी परेशानी में पड़ी होती।

क़ियामत का मंज़र क़ुरआन में जगह-जगह पेश किया गया है। सूरा ज़ुमर में है –''क़ियामत के दिन सारी ज़मीन अल्लाह की मुट्ठी में होगी और आसमान अल्लाह के हाथ में लिपटे होंगे।''

हज़रत आइशा (रज़ि.) ने पूछा, ''ऐ अल्लाह के रसूल! जब ज़मीन व आसमान अल्लाह के क़ब्ज़-ए-क़ुदरत में होंगे तो लोग कहाँ होंगे?'' नबी (सल्ल.) ने जवाब दिया, ''पुलसिरात पर।'' देखा आपने! कितनी मुश्किल बात का हल सामने आया और किसके सवाल पर। हज़रत आइशा (रज़ि.) के सवाल पर। क़ियामत के दिन इंसानों की बदहवासी की कैफ़ियत का नक़्शा अल्लाह तआला ने अपनी किताब क़ुरआन में बहुत-सी जगहों पर खींचा है। अगर उन जगहों की तफ़सील हज़रत आइशा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) से न पूछतीं तो क़ियामत की हौलनाकी का इल्म हमें इस तरह न होता जैसा अब है।

नबी (सल्ल.) ने अपनी एक तक़रीर में कहा, ''क़ियामत में लोग नंगे उठेंगे।''

इस बात की बारीकी को हज़रत आइशा (रज़ि.) ने ज़ेहन में रखा, फिर नबी (सल्ल.) से पूछा, ''ऐ अल्लाह के रसूल! मर्द और औरतें सब इकट्ठा होंगे तो क्या एक-दूसरे की नज़रें न उठेंगी?''

अल्लाहु अकबर! कितने प्यारे अन्दाज़ में नबी (सल्ल.) ने समझाया, ''आइशा! वह बड़ा नाज़ुक वक़्त होगा। सबको अपनी-अपनी पड़ी होगी। किसी को किसी की ख़बर तक न होगी।'' हदीसों में एक जगह आता है कि जहन्नम को देख लेने के बाद हर इंसान यही चाहेगा कि मैं बच जाऊँ चाहे सारे लोग उसमें झोंक दिए जाएँ। ''हज़रत आइशा (रज़ि.) ने पूछा, ''ऐ अल्लाह के रसूल! क्या क़ियामत में कोई किसी को याद भी करेगा?'' नबी (सल्ल.) ने जवाब दिया, ''तीन मौक़ों पर कोई किसी को याद न करेगा – एक वह मौक़ा जब

आमाल तौले जाएँगे, दूसरा जब आमालनामे बँट रहे होंगे और तीसरे जब जहन्नम गरज-गरजकर कह रही होगी कि मैं तीन क़िस्म के आदमियों के लिए मुक़र्रर हूँ.....।''

अब ज़रा इस बारीकी पर ग़ौर कीजिए जिसके बारे में हज़रत आइशा (रज़ि.) ने सवाल किया था।

एक और नाज़ुक सवाल देखिए। हज़रत आइशा (रज़ि.) ख़ुद औरत ज़ात होने की वजह से शर्म व हया की बारीकियों को समझती थीं। अत: उन्हें ख़याल आया कि कुँवारी लड़की निकाह के वक़्त रज़ामन्दी देते वक़्त किस हद तक शर्माती है, चुनांचे इसी मुश्किल को नबी (सल्ल.) के सामने रखा तो नबी (सल्ल .) ने जवाब दिया, ''उसकी ख़ामोशी ही उसकी रज़ामन्दी है।''

एक बार हज़रत आइशा (रज़ि.) क़ुरआन की सूरा मोमिनून पढ़ रहीं थीं। चौथी आयत पर रुकीं ''और वे लोग जो काम करते हैं और उनके दिल डरते हैं कि उनको अपने रब की तरफ़ लौट कर जाना है'' तो सोचने लगीं कि ये चोर, बदकार और शराबी की तरफ़ इशारा है ? नबी (सल्ल.) से पूछा। नबी (सल्ल.) ने जवाब दिया इससे मुराद वह नमाज़ी है और रोज़ेदार है जो ख़ुदा से डरता है।'' पड़ोसियों के हक़ अदा करने के बारे में पूछा कि उनमें पहल किस पड़ोसी से की जाए ? नबी (सल्ल.) ने जवाब दिया, ''जिसका दरवाज़ा तुम्हारे घर से ज़्यादा क़रीब हो।''

क़ुरआन में महरम (जिनसे निकाह नहीं हो सकता) और नामहरम (जिनसे निकाह हो सकता है) की बहस आई है, नबी (सल्ल.) से उसकी तशरीह अगर हज़रत आइशा (रज़ि.) बार-बार पूछकर न करा लेतीं तो उम्मत आज परेशान रहती। सिर्फ़ एक मिसाल सुनिए –

एक बार हज़रत आइशा (रज़ि.) के रज़ाई चचा (यानी जिस औरत ने हज़रत आइशा (रज़ि.) को दूध पिलाया था उसके देवर) उनसे मिलने आए। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने उनसे परदा किया। चचा ने एतिराज़ किया कि ''मैं तो तुम्हारा चचा हूँ।'' हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जवाब दिया, ''मैंने तुम्हारी भाभी का दूध पिया है, औरत के देवर से क्या ताल्लुक़!'' उसी वक़्त नबी (सल्ल.)

आए और फ़रमाया कि ये तुम्हारे महरम हैं। अल्फ़ाज़ ये हैं – "ये तुम्हारे चचा हैं, तुम इन्हें अन्दर बुला लो।"

इस तरह की बहुत-सी बातें हदीसों में मौजूद हैं जिनसे एक तरफ़ नबी (सल्ल.) के तालीम देने के तरीक़े का पता चलता है तो दूसरी तरफ़ हज़रत आइशा (रज़ि.) के इल्म के शौक़ का। मक़सद सिर्फ़ यह है कि पढ़नेवाले दोनों बातें समझ लें। अब आख़िर में सिर्फ़ एक मसला बयान किया जाता है को बयान करता हूँ जो बेहद नाज़ुक है। ऐसे मौक़े पर भी अगर एक शागिर्द अपने होश बरक़रार रखे तो यह अल्लाह की तौफ़ीक़ के सिवा कुछ नहीं। अल्लाह अगर तौफ़ीक़ न दे तो इंसान के बस का काम नहीं।

बहुत मशहूर वाक़िआ है। एक बार प्यारे नबी (सल्ल.) की पाक बीवियों ने नबी (सल्ल.) से कुछ सुविधाओं की दरख़ास्त की। नबी (सल्ल.) अपनी बीवियों को उम्मत की औरतों के लिए नमूना बनाना चाहते थे।

पाक बीवियों (रज़ि.) की फ़रमाइश फिर भी जारी रही तो नबी (सल्ल.) ने एक माह के लिए बीवियों से 'ईला' ले लिया यानी एक माह तक बीवियों के पास न जाएँगे। यह बेताल्लुक़ी उन बीवियों के लिए कैसी परेशानी की बात थी। वे शौहर को अल्लाह का रसूल मानती थीं। उन्हें दो-जहान की बरबादी नज़र आ रही थी। हाल यह था कि वे तो वे, पूरा मुस्लिम समाज बेक़रार और बेचैन था। फिर जब महीना ख़त्म हुआ तो नबी (सल्ल.) हज़रत आइशा (रज़ि.) के कमरे में तशरीफ़ ले गए। हज़रत आइशा (रज़ि.) को नबी (सल्ल.) के आने से बहुत ख़ुशी हो सकती थी लेकिन ऐसी हालत में भी हज़रत आइशा (रज़ि.) ने नबी (सल्ल.) से सबक़ ले ही लिया। अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल! आज तो महीने की 29 तारीख़ है।" नबी (सल्ल.) ने जवाब दिया, "क्या महीना 29 का नहीं होता?"

और हक़ीक़त में उस दिन 29 ही का चाँद हुआ था।

मुकम्मल इल्म

जिस ज़हीन ख़ातून यानी हज़रत आइशा (रज़ि.) ने नौ साल अल्लाह के रसूल से इल्म हासिल किया हो और जिसे ख़ुद नबी (सल्ल.) बात-बात पर इल्म सिखा रहे हों, उस ख़ातून के इल्म का क्या कहना। चुनांचे बड़े-बड़े सहाबा (रज़ि.) जब किसी मसले में ठीक राय पर न पहुँचते तो हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास जाते, यहाँ तक कि हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) भी उलझे मसलों को सुलझाने के लिए हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास जाते थे।

हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि.) कहते हैं कि हम सहाबा (रज़ि.) को कोई ऐसी मुश्किल पेश न आई कि जिसको हमने आइशा (रज़ि.) से पूछा हो और उनसे इस बारे में कुछ मालूमात हमको न मिली हों।

हज़रत अता बिन अबी अर-रियाह कहते हैं –

> "हज़रत आइशा (रज़ि.) सबसे ज़्यादा मसले-मसाइल जाननेवाली, सबसे ज़्यादा इल्मवाली और लोगों में सबसे ज़्यादा अच्छी राय रखनेवाली थीं।"

हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि.) के बेटे हज़रत अबू सलमा जो ख़ुद बड़े आलिम थे, गवाही देते हैं कि मैंने नबी (सल्ल.) की सुन्नतों का जानने वाला और राय में अगर इसकी ज़रूरत पड़े तो हज़रत आइशा (रज़ि.) से ज़्यादा फ़क़ीह (मसले-मसाइल जाननेवाला) और आयतों के नाज़िल होने का समय और 'फ़राइज़' यानी मीरास के मसलों का जाननेवाला किसी को नहीं पाया।

एक दिन हज़रत अमीर मुआविया (रज़ि.) ने अपनी हुकूमत के ज़माने में एक दरबारी से पूछा, "लोगों में सबसे बड़ा आलिम कौन है?" दरबारी ने जवाब दिया, "अमीरुल मोमिनीन! आप।" हज़रत अमीर मुआविया (रज़ि.) ने फिर क़सम देकर पूछा तो दरबारी ने कहा, "अगर क़सम है तो फिर हज़रत आइशा (रज़ि.)।"

हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.) के आलिम व फ़ाज़िल और फ़क़ीह (फ़िक़्ह के

माहिर) बेटे हज़रत उरवा का क़ौल है, "मैंने हराम व हलाल के मसलों का जानकार और शायरी और तिब्ब (चिकित्सा) में उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) से बढ़कर किसी को नहीं देखा।"

हज़रत मसरूक़ ताबई जो हज़रत आइशा (रज़ि.) के शार्गिद थे, उनसे एक आदमी ने पूछा, "क्या उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) को फ़राइज़ यानी मीरास के मसलों का इल्म था?" शार्गिद ने जवाब दिया – "ख़ुदा की क़सम! मैंने बड़े-बड़े सहाबा (रज़ि.) को हज़रत आइशा (रज़ि.) से फ़राइज़ के मसले पूछते हुए देखा है।"

इमाम ज़ुहरी कहते हैं – "अगर तमाम मर्दों और उम्महातुल मोमिनीन का इल्म जमा किया जाता, तो हज़रत आइशा (रज़ि.) का इल्म उन सबसे ज़्यादा होता।"

नबी (सल्ल.) ने एक हदीस में फ़रमाया, "अपने दीन का एक हिस्सा इस गोरी औरत से सीखो (यानी हज़रत आइशा रज़ि. से)।

'एक हिस्सा' का मतलब शायद उस इल्म से है जो ख़ास औरतों के बारे में है। जिसके बारे में तमाम आलिमों की एक राय है कि अगर हज़रत आइशा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) से सीखकर उसे आम न करतीं तो दीन का इल्म हमें अधूरा ही मिलता। वल्लाहु आलम (अल्लाह ही बेहतर जानता है)।

नबी (सल्ल.) ने एक दूसरी हदीस में फ़रमाया, "आइशा को तमाम औरतों पर उसी तरह बड़ाई हासिल है जिस तरह तमाम खानों पर सरीद को (एक तरह का ख़ास खाना) यह इल्म जो हज़रत आइशा (रज़ि.) को हासिल हुआ उसे उन्होंने किस तरह फैलाया इसकी तफ़सील आगे आएगी। लेकिन इससे पहले यह जान लीजिए कि हज़रत आइशा (रज़ि.) ने घरेलू और सामाजिक ज़िन्दगी किस तरह बसर की ?

घरेलू ज़िन्दगी

उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) की घरेलू ज़िन्दगी बहुत सादा थी। इसकी वजह यह थी कि नबी (सल्ल.) दिखावे और बनावट को पसन्द नहीं करते थे। नबी (सल्ल.) को सादगी पसन्द थी। नबी (सल्ल.) चाहते थे कि उनका घर और घर के लोग सादगी का नमूना हों, इसलिए नबी (सल्ल.) अपनी बीवियों को बहुत ज़्यादा नसीहत करते थे। बीवियों में हज़रत आइशा (रज़ि.) सबसे ज़्यादा कम उम्र और कम तजुर्बे वाली थीं, इसलिए सबसे ज़्यादा नबी (सल्ल.) का ध्यान हज़रत आइशा (रज़ि.) पर था। सबसे ज़्यादा उन्हीं पर ध्यान देने की दूसरी वजह यह थी कि हज़रत आइशा (रज़ि.) सबसे ज़्यादा ज़हीन और याददाश्त की तेज़ थीं। उनकी मिसाल एक सादे पन्ने की भी थी। सादे पन्ने पर लिखाई बड़ी सफ़ाई से हो सकती है। इसलिए हम देखते हैं कि तालीम व तरबियत के सिलसिले में नबी (सल्ल.) का ध्यान सबसे ज़्यादा हज़रत आइशा (रज़ि.) की तरफ़ रहा।

हज़रत आइशा (रज़ि.) जब नबी (सल्ल.) के घर आईं तो नबी (सल्ल.) का घर कोई महल या बड़ा मकान न था। मस्जिदे-नबवी से मिले हुए कुछ कमरे थे, उनमें से एक कमरा ऐसा था जिसका दरवाज़ा मस्जिदे-नबवी के सहन की तरफ़ था। यही कमरा हज़रत आइशा (रज़ि.) का घर था। इस घर की शान यह थी –

यह कमरा सात-आठ हाथ लम्बा और इसी के मुताबिक़ चौड़ा था। इसकी दीवारें मिट्टी की थीं। खजूर की टहनियों और पत्तों की छत थी। उस छत पर एक कम्बल पड़ा रहता था ताकि हुजरे में छत की तरफ़ से रेत न गिरे और कमरा बारिश के पानी से भी बचा रहे। छत की ऊँचाई इतनी थी कि एक आदमी खड़ा होकर हाथ उठाए तो छत को छू सकता था। दरवाज़े में एक पट का किवाड़ था जिसमें कुण्डी भी न थी। यह किवाड़ उम्र भर कभी बन्द नहीं हुआ। परदे के लिए एक कम्बल दरवाज़े पर लटका रहता था। नबी (सल्ल.) उसी दरवाज़े से मस्जिद जाते थे। अक्सर दरवाज़े के पास ही बैठते थे कि अगर कोई चीज़ हज़रत आइशा (रज़ि.) से माँगना होती तो परदे के अन्दर हाथ बढ़ाकर माँग लेते थे।

सामान

हज़रत आइशा (रज़ि.) के उस घर में एक चारपाई, एक तिपाई, एक बिस्तर, एक तकिया (उस तकिए में रूई के बदले छाल भरी थी), एक मटका खजूरें रखने के लिए, एक मटका आटा रखने के लिए (ये दोनों मटके कभी-भरे नज़र न आए, अगर कभी भरे भी तो शाम तक ख़ाली हो गए), पानी के लिए एक बरतन, पानी पीने के लिए एक प्याला। उस घर में दुनिया भर को रौशनी देने वाली एक मुबारक ज़ात यानी प्यारे नबी (सल्ल.) रहते थे। लेकिन इसी घर के बारे में हज़रत आइशा (रज़ि.) ख़ुद कहती हैं कि चालीस-चालीस रातें बीत जाती थीं और घर में चिराग़ न जलता था।

खाना-पानी

उस घर के खाने-पीने की चीज़ों के बारे में हज़रत आइशा (रज़ि.) ख़ुद कहती हैं कि महीना-महीना भर आग ही न जलती थी। ज़्यादातर छुहारे और पानी पर गुज़र-बसर होती थी। वह भी इस तरह की नबी (सल्ल.) ने शायद ही कभी पेट भर के खाया हो।

जब ख़ैबर का क़िला फ़तह हुआ तो नबी (सल्ल.) ने अपनी पाक बीवियों के सालाना ख़र्च के लिए छुहारों और जौ के साथ कुछ वज़ीफ़ा (गुज़ारे की रक़म) तय कर दिया था। उसमें से हज़रत आइशा (रज़ि.) को भी मिलता। लेकिन ख़ैरात करने की यह हालत थी कि ये सामान कुछ ही दिनों में ख़त्म हो जाते थे।

सहाबा किराम (रज़ि.) नबी (सल्ल.) की सादगी और दरियादिली को समझते थे इसलिए वे हज़रत आइशा (रज़ि.) के घर तोहफ़े भेज दिया करते थे। लेकिन उन तोहफ़ों का आलम यह था कि इधर आए उधर किसी ग़रीब को भेज दिए गए। अक्सर ऐसा होता कि नबी (सल्ल.) घर में आए और पूछा, "कुछ खाने को है?" हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जवाब दिया, "ऐ अल्लाह के रसूल! अल्लाह के नाम के सिवा कुछ नहीं।" नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "तो अच्छा आज मेरा रोज़ा है।" और फिर हज़रत आइशा (रज़ि.) का भी रोज़ा हो जाता।

मिज़ाज

हज़रत आइशा (रज़ि.) बड़ी भोली थीं। उस भोलेपन पर नबी (सल्ल.) की मुहब्बत और तालीम का असर हुआ तो सादगी पैदा हुई। इस भोलेपन की वजह से हज़रत आइशा (रज़ि.) दिल की पूरी बात नबी (सल्ल.) के सामने रख देती थीं। नबी (सल्ल.) जिस तरह मुनासिब समझते नसीहत करते। इस सिलसिले में कुछ क़िस्से सुनिए–

हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) जो नबी (सल्ल.) की पहली बीवी थीं, उन्होंने नबी (सल्ल.) की बहुत ख़िदमत की थी। इस्लामी दावत को आगे बढ़ाने में तन-मन-धन से उस वक़्त साथ दिया था जब मक्का में क़ुरैशी सरदार नबी (सल्ल.) का मुँह बन्द करने और जान लेने पर तुले थे। हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) के इन्तिक़ाल के बाद नबी (सल्ल.) अक्सर उनको याद किया करते थे। यह बात कभी-कभी नबी (सल्ल.) की दूसरी बीवियों को खल जाती थी। हज़रत आइशा (रज़ि.) के अलावा दूसरी बीवियाँ बड़ी उम्र की थीं। वे नबी (सल्ल.) का ग़म दूर करने के उपायों में लग जाती थीं। लेकिन हज़रत आइशा (रज़ि.) कम उम्र और भोलेपन की वजह से दिल की बात ज़बान पर ले आतीं थी। चुनांचे एक बार हज़रत आइशा (रज़ि.) की ज़बान से निकल गया, "ऐ अल्लाह के रसूल! आप एक बूढ़ी औरत को इतना क्यों याद करते हैं, अल्लाह तआला ने उनसे अच्छी बीवियाँ आपको दी हैं।"

ये सुनते ही नबी (सल्ल.) के चेहरे का रंग बदल गया। नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "ख़ुदा की क़सम वे मेरी ऐसी बीवी थीं कि जब लोगों ने मेरी नुबूवत से इंकार किया तो वे मुझ पर ईमान लाईं। जब लोगों ने मुझे झुठलाया तो उन्होंने मेरी तसदीक़ की (कि बेशक आप नबी हैं) और जब (इस्लामी दावत को आगे बढ़ाने के लिए) कोई पैसे से मेरी मदद नहीं कर रहा था, उस वक़्त उन्होंने अपनी दौलत दी और यह कि उनसे अल्लाह तआला ने मुझे औलाद दी।"

इस क़िस्से को यहाँ आसान और छोटा करके बयान किया गया है। यह क़िस्सा कई तरह से हदीसों की किताबों में आया है। कहीं तफ़सील से, कहीं मुख़्तसर। मज़े की बात यह है कि ये सब क़िस्से हज़रत आइशा (रज़ि.) ने ही

बयान किए हैं। हज़रत आइशा (रज़ि.) चाहतीं तो अपनी कमज़ोरी, जो इस क़िस्से में नज़र आई थी उसे छिपा जातीं और उम्मत को न बतातीं। लेकिन वे दिल खोलकर ये हदीस बयान करती हैं और बूढ़ी सौतन जो दुनिया में नहीं थीं, उनकी बड़ाई को उजागर कर रही हैं और कहती हैं कि जब नबी (सल्ल.) ने यह जवाब दिया तो मुझे हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) पर रश्क आया कि काश! उनकी जगह मैं होती।

कहीं से कोई क़ैदी लाया गया। नबी (सल्ल.) ने उस क़ैदी को हज़रत आइशा (रज़ि.) के कमरे में हवालात के तौर पर रखा। हज़रत आइशा (रज़ि.) दूसरी औरतों से बातें कर रही थीं। क़ैदी मौक़ा पाकर निकल भागा। प्यारे नबी आए और पूछा कि क़ैदी कहाँ गया। अब बेचारी हज़रत आइशा (रज़ि.) चुप! ग़ुस्से में नबी (सल्ल.) की ज़बान से निकल गया, "तेरे हाथ कटें"। उसके बाद झट कमरे से बाहर आए। सहाबा (रज़ि.) से हाल कहा और वह क़ैदी फिर पकड़ा गया। अब जो नबी (सल्ल.) फिर कमरे में आए तो देखा कि हज़रत आइशा (रज़ि.) कभी अपने एक हाथ को देखती हैं और कभी दूसरे हाथ को। नबी (सल्ल.) ने पूछा, "आइशा! यह क्या कर रही हो।" बोलीं, "ऐ अल्लाह के रसूल! यह देखती हूँ कि कौन-सा हाथ कटेगा।" नबी (सल्ल.) उनके इस भोलेपन से बहुत मुतास्सिर हुए और उनके लिए दुआ की।

एक बार कुछ यहूदी नबी (सल्ल.) के पास आए। ये सब अपने दिलों में नबी (सल्ल.) से नफ़रत और दुश्मनी रखते थे और नबी (सल्ल.) से बहुत जलते थे। वे आए तो ज़बान दबाकर अस्सलामु अलैकुम के बदले कहा, "अस्साम अलैकुम"। 'अस्सलामु अलैकुम' के माने हैं तुमपर सलामती हो और 'अस्साम अलैकुम' के माने हैं तुम को मौत आए। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने सुन लिया। जवाब दिया– "अलैकुमस्साम वल-लानतु (तुमको भी मौत आए और तुमपर लानत)। नबी (सल्ल.) ने फ़ौरन टोका, "आइशा नर्मी,नर्मी। अल्लाह तआला हर बात में नर्मी पसन्द करता है।" एक बार किसी ने हज़रत आइशा (रज़ि.) की कोई चीज़ चुरा ली। उन्होंने उसे बद-दुआ दी। बद-दुआ सुनकर नबी (सल्ल.) ने नसीहत की, "बद-दुआ देकर अपना सवाब और उसका गुनाह कम न करो।" एक बार सफ़र में ऊँट कुछ तेज़ी दिखाने लगा।

हज़रत आइशा (रज़ि.) ने ऊँट पर लानत भेजी। नबी (सल्ल.) साथ ही ऊँट पर बैठे थे। नबी (सल्ल.) ने ऊँट को रुकवाया, उसपर से उतरे और हुक्म दिया कि ऊँट वापस कर दो, लानत की हुई चीज़ हमारे साथ नहीं रह सकती। समझाना यह था कि ऐ आइशा! जानवर पर भी लानत नहीं भेजनी चाहिए।

हज़रत आइशा (रज़ि.) ने एक बार एक औरत के बारे में कहा कि वह तो ठिगनी (छोटे क़द की) है। नबी (सल्ल.) ने टोका, "आइश! तुमने ग़ीबत की।"

हज़रत आइशा (रज़ि.) ने एक बार हज़रत सफ़िया (रज़ि.) (नबी (सल्ल.) की एक बीवी) को ठिगनी (नाटी) कह दिया तो नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "आइशा तुमने ऐसी बात कही कि अगर समुद्र में डाल दी जाए तो उसका कुल पानी कड़वा हो जाए।"

इस तरह के बहुत-से क़िस्से हैं। नबी (सल्ल.) ने हर मौक़े पर हज़रत आइशा (रज़ि.) के ज़ेहन में बलंदी पैदा की और हज़रत आइशा (रज़ि.) ने हर क़िस्से से अच्छी आदतों और इल्म व ख़ूबी से अपने को सँवारा।

नबी (सल्ल.) तालीम व तरबियत के इस असर को देखते थे। तमाम बीवियों से ज़्यादा आइशा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) की तालीम से फ़ायदा उठा रही थीं, तो इसका असर नबी (सल्ल.) पर भी होता था। आप तमाम बीवियों से ज़्यादा आइशा (रज़ि.) से मुहब्बत करने लगे। इसपर नबी (सल्ल.) ने अल्लाह तआला से माफ़ी भी माँगी। अल्फ़ाज़ ये हैं– "ऐ अल्लाह! जो चीज़ मेरे बस में है (यानी बीवियों से सुलूक और लेन-देन में बराबरी) मैं वह सब इंसाफ़ से करता हूँ लेकिन जो मेरे बस में नहीं है उसको माफ़ करना (यानी मुहब्बत की कमी-बेशी को)।"

नबी (सल्ल.) की मुहब्बत हज़रत आइशा (रज़ि.) के इसी इल्म और ख़ूबी की वजह से थी जिसका ऊपर ज़िक्र हुआ। न कि इसकी वजह यह थी कि हज़रत आइशा (रज़ि.) ख़ूबसूरत थीं। ख़ूबसूरती में कई बीवियाँ हज़रत आइशा (रज़ि.) से बढ़कर थीं। उम्मुल मोमिनीन हज़रत ज़ैनब (रज़ि.), उम्मुल मोमिनीन हज़रत सफ़िया (रज़ि.), उम्मुल मोमिनीन हज़रत जुवैरिया (रज़ि.) और हज़रत मारिया

क़िब्तिया (रज़ि.), ये बीवियाँ हज़रत आइशा (रज़ि.) से ज़्यादा ख़ूबसूरत थीं। उनकी ख़ूबसूरती से पहले-पहल हज़रत आइशा (रज़ि.) ख़ुद मुतास्सिर हो गई थीं।

घर का काम

जो घर, घर और मकान नहीं बल्कि सिर्फ़ एक कमरा हो, कमरे में वह सामान हो जो ऊपर बयान किया जा चुका है और जिस घर में सादा ज़िन्दगी चलती-फिरती नज़र आए, ज़ाहिर है उस घर की घरवाली अगर रो-पीटकर घर का काम करे तो वह घर नमूने का घर नहीं बन सकता। नमूने का घर वही हो सकता है जिसके अन्दर घरवाली ख़ुशी-ख़ुशी ख़ुद सारा काम करे। हज़रत आइशा (रज़ि.) काम-काज में दूसरी औरतों के लिए नमूना हैं।

नबी (सल्ल.) ने हज़रत बिलाल (रज़ि.) के ज़िम्मे यह काम किया था कि वे ज़रूरी सामान पाक बीवियों के घरों में पहुँचा दिया करें। चुनांचे वे सामान नबी (सल्ल.) की बीवियों के यहाँ पहुँचा दिया करते थे। इस तरह सामान हज़रत आइशा (रज़ि.) को भी मिल जाया करता था। अब यह ख़ुद उनका काम था कि वे किस तरह इसे काम में लाएँ। बयान करनेवालों ने इस सिलसिले में जो कुछ लिखा है, देखिए –

हज़रत आइशा (रज़ि.) दिल की पूरी लगन के साथ घर का सारा काम करती थीं। वे अपना काम अपने हाथ से करने में ख़ुशी महसूस करती थीं। वे घर की सफ़ाई ख़ुद करतीं, ख़ुद आटा पीसतीं, ख़ुद आटा गूंधतीं और ख़ुद ही रोटी पकाती थीं। नबी (सल्ल.) के लिए बिस्तर बिछातीं, आप (सल्ल.) के वुज़ू के लिए पानी लाकर रख दिया करतीं। जब नबी (सल्ल.) क़ुरबानी के ऊँट भेजते तो उनके लिए ख़ुद क़लादा तैयार करतीं। नबी (सल्ल.) के कपड़े अपने हाथ से धोतीं। नबी (सल्ल.) के सिर को धोतीं। नबी (सल्ल.) के सिर में कंघा करतीं, आप (सल्ल.)को इत्र लगातीं। सोते वक़्त नबी (सल्ल.) के लिए मिस्वाक रखने का ख़याल रखतीं, जब आप (सल्ल.) मिस्वाक कर चुकते तो उसे बड़ी सफ़ाई से धोकर रख देतीं। घर में कोई मेहमान आता तो उसकी ख़ातिरदारी करतीं। घर में जो कुछ होता मेहमान को खिलाती-पिलातीं। नबी (सल्ल.) मस्जिद में खाने

की चीज़ मँगवाते तो भेज दिया करतीं, न होने पर मजबूरी बता दिया करतीं। कभी-कभी नबी (सल्ल.) मेहमानों को लेकर आ जाते तो हज़रत आइशा (रज़ि.) से जो हो सकता मेहमान की ख़ातिर करने में कमी न करतीं। हज़रत क़ैस ग़िफ़ारी (रज़ि.) कहते हैं कि एक बार नबी (सल्ल.) ने हम लोगों से कहा, "चलो आइशा के घर चलें।" हम नबी (सल्ल.) के साथ कमरे में पहुँचे। नबी (सल्ल.) ने कहा, "आइशा हम लोगों को खाना खिलाओ।" हज़रत आइशा (रज़ि.) चूनी का पका हुआ खाना लाईं। आप (सल्ल.) ने खाने को कुछ और माँगा तो हरीरा (जो ख़ास नबी सल्ल. के लिए रखा था) पेश किया। नबी (सल्ल.) ने फिर कुछ माँगा तो दूध पेश किया उसके बाद एक प्याले में पानी लाईं।

यह नक़्शा है नबी (सल्ल.) की सबसे ज़्यादा चहेती बीवी के घर का। आज हम हैं और हमारे घरों की औरतें। किस क़द्र बनावट और दिखावा है हमारे घरों में। अल्लाह के नबी (सल्ल.) के घर से क्या नमूना हमें मिला और हम हैं कि हमने इस नमूने को छोड़कर अपनी नाक ऊँची करने के लिए कैसे-कैसे जंजाल पाल लिए। और यह सब किसके लिए? अपने लिए। लेकिन अल्लाह के नबी (सल्ल.) और आपके घरवालों का व्यवहार किसके लिए था सुन लीजिए –

दूसरों के लिए

एक सहाबी को अपने यहाँ वलीमे की दावत करनी थी लेकिन उनके घर में कुछ न था। वे नबी (सल्ल.) के पास आए, अपनी ज़रूरत बताई । नबी (सल्ल.) ने हज़रत आइशा (रज़ि.) को कहलवा भेजा कि ग़ल्ले की टोकरी भेज दें। उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) ने ग़ल्ले से भरी टोकरी जैसे रखी थी वैसी की वैसी ही भिजवा दी। शाम के खाने के लिए भी निकालकर कुछ नहीं रखा। चुनांचे शाम को खाने के लिए कुछ न था। यह सब क्यों? इसपर ख़ुद हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जो कुछ फ़रमाया देखिए –

हज़रत आइशा (रज़ि.) फ़रमाती हैं कि नबी (सल्ल.) जब घर में आते तो बुलन्द आवाज़ में यह कहते हुए आते–

"अगर आदमी के पास माल-दौलत से भरे दो मैदान हों तो वह तीसरे मैदान की ख़ाहिश करेगा। उसकी ख़ाहिश (लोभ) के मुँह को (क़ब्र की) मिट्टी ही भर सकती है (यानी मरते दम तक यह ख़ाहिश पीछा नहीं छोड़ती)। अल्लाह तआला फ़रमाता है कि हमने माल नमाज़ क़ायम करने और सदक़ा देने के लिए बनाया है, तो जो अल्लाह की तरफ़ लौटेगा, अल्लाह उसकी तरफ लौटेगा।"

अस्ल में हज़रत आइशा (रज़ि.) ने नबी (सल्ल.) की इन बातों को गिरह में बाँध लिया था, इनपर उन्होंने किस तरह अमल किया इसका जवाब सुनिए–

"नबी (सल्ल.) के घरों का इन्तिज़ाम हज़रत बिलाल (रज़ि.) के ज़िम्मे था। वे साल भर का ग़ल्ला नबी (सल्ल.) की पाक बीवियों को भिजवा देते। अगर ज़रूरत पेश आ जाती तो बाहर से क़र्ज़ ला देते। नबी (सल्ल.) के इन्तिक़ाल से पहले सारे अरब पर आप (सल्ल.) का क़ब्ज़ा हो चुका था। तमाम इलाक़ों से ख़ज़ाने पर ख़ज़ाने बैतुलमाल (इस्लामी धनकोष) में आते थे। लेकिन जिस दिन नबी (सल्ल.) का इन्तिक़ाल हुआ उस दिन हज़रत आइशा (रज़ि.) के घर में एक दिन के गुज़ारे का सामान न था।"

और यह सब यही नहीं कि नबी (सल्ल.) की ज़िन्दगी तक हो, नबी (सल्ल.) के बाद भी यही हालत रही। जब हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ख़लीफ़ा हुए तो ख़ैबर की पैदावार से कुछ ग़ल्ला मिलता था। हज़रत उमर (रज़ि.) ख़लीफ़ा हुए तो नबी (सल्ल.) की पाक बीवियों को वज़ीफ़ों (गुज़ारे) की रक़म मिलने लगी।

हज़रत उमर (रज़ि.) नबी (सल्ल.) की दूसरी पाक बीवियों को दस- दस हज़ार दिरहम सालाना देते थे। लेकिन हज़रत आइशा (रज़ि.) को बारह हज़ार।

हज़रत उसमान (रज़ि.) और हज़रत अली (रज़ि.) की हुकूमत के ज़माने में यह सब मिलता रहा, फिर यह कि जब हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर रज़ि. (हज़रत आइशा के भांजे) को तरक़्क़ी मिली तो वे बड़ी-बड़ी रक़में भेजते थे। लेकिन जिस दिन यह सब आता उसी दिन घर में फ़ाक़ा होता, क्योंकि सारा माल

ग़रीबों में बाँट दिया जाता था।

एक दिन हज़रत आइशा (रज़ि.) रोज़े से थीं। रक़म ख़ैरात कर रही थीं कि दो दिरहम रह गए। एक ज़रूरतमन्द सामने था। बाँदी ने निवेदन किया, "आज आपका रोज़ा है," लेकिन हज़रत आइशा (रज़ि.) का हाथ न रुका। दोनों दिरहम ज़रूरतमन्द को दे दिए और दामन झाड़कर उठ खड़ी हुईं।

सच्ची बात यह है कि नबी (सल्ल.) हज़रत आइशा (रज़ि.) के अन्दर औरतों के लिए एक मुकम्मल नमूना उभरते देख रहे थे, इसी लिए उनसे बहुत मुहब्बत करते थे और चाहते थे कि ज़्यादा से ज़्यादा आइशा (रज़ि.) को दीन व अख़्लाक़ के सबक़ हासिल करने का मौक़ा मिले। नबी (सल्ल.) की इस इच्छा को उम्मुल मोमिनीन हज़रत सौदा (रज़ि.) ने भाँप लिया था। चूँकि वे बूढ़ी भी बहुत हो गई थीं इसलिए उन्होंने अपनी बारी का दिन हज़रत आइशा (रज़ि.) को दे दिया था।

नबी (सल्ल.) को हज़रत आइशा (रज़ि.)से मुहब्बत

नबी (सल्ल.) को जो मुहब्बत हज़रत आइशा (रज़ि.) से थी उसका कुछ हाल ऊपर लिखा जा चुका है कि यह मुहब्बत नबी (सल्ल.)को उनसे क्यों थी। अब कुछ और बातें पेश हैं –

नबी (सल्ल.) की हज़रत आइशा (रज़ि.) से यह मुहब्बत सहाबा किराम (रज़ि.) को मालूम थी। सहाबा किराम (रज़ि.) हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास उस दिन तोहफ़े भेजा करते थे जिस दिन हज़रत आइशा (रज़ि.) के घर नबी (सल्ल.) के रहने की बारी होती थी। तमाम पाक बीवियों (रज़ि.) के दिलों में ये ख़याल अकसर आया करता था, लेकिन वे नबी (सल्ल.) से कह न सकती थीं। एक बार सबने मिलकर नबी (सल्ल.) की बेटी हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) को नबी (सल्ल.) के पास भेजा कि वे सबकी तरफ़ से नबी (सल्ल.) से कहें। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) गईं और पाक बीवियों (रज़ि.) का पैग़ाम पहुँचाया। बेटी की ज़बान से सबका पैग़ाम सुना तो नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया: "ऐ मेरी प्यारी बेटी! जिसको मैं चाहूँ क्या तुम उसको न चाहोगी?" इतना जवाब हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) के लिए काफ़ी था। वे वापस आईं। सबने दोबारा भेजना चाहा, लेकिन

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) न गईं तो उम्मुल मोमिनीन हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि.) को भेजा गया। ये बीवी बहुत समझदार और संजीदा थीं। समझदारी और तालीम में हज़रत आइशा (रज़ि.) के बाद उनका नम्बर था। उन्होंने बड़े अदब से दरख़ास्त पेश की तो नबी (सल्ल.) ने कहा –

"उम्मे सलमा! मुझे आइशा के मामले में परेशान न करो। तुम जानती हो कि आइशा के अलावा और किसी बीवी के लिहाफ़ में मुझपर वह्य नाज़िल न हुई।"

वह्य नाज़िल होने का सौभाग्य इतना बड़ा सौभाग्य है कि हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि.) ने फिर कुछ न कहा। सच्ची बात यह है कि जब अल्लाह तआला अपना हुक्म नाज़िल करे, जिबरील (अलै.) वह पैग़ाम लेकर आएँ और हज़रत आइशा (रज़ि.) के लिहाफ़ में नबी (सल्ल.) हों तो इसका मतलब यह है कि अल्लाह तआला को ख़ुद मंज़ूर था कि आइशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) की अहमियत और सम्मान बढ़े।

बहुत-सी बातों में से सिर्फ़ एक और क़िस्सा सुनिए कि नबी (सल्ल.) पाक बीवियों को सादगी की तरफ़ क्यों लाना चाहते थे। ख़ास तौर से हज़रत आइशा (रज़ि.) को जो सब बीवियों में कम उम्र थीं। क़िस्सा इस तरह है –

एक बार कहीं से हार आया। नबी (सल्ल.) ने कहा, " यह हार मैं उसको दूँगा जो मुझको सबसे ज़्यादा प्यारा है। सबने यही समझा कि हार हज़रत आइशा (रज़ि.) को मिलेगा। लेकिन नबी (सल्ल.) ने हार अपनी नवासी (हज़रत ज़ैनब की बेटी) को दे दिया। यह देखकर सबने समझ लिया कि इन्तिहाई मुहब्बत के बावजूद नबी (सल्ल.) ने हार हज़रत आइशा (रज़ि.) को क्यों नहीं दिया।

हज़रत आइशा (रज़ि.) की ख़ुशी के लिए

हज़रत आइशा (रज़ि.) और नबी (सल्ल.) की ज़िन्दगी और मुहब्बत का यह नमूना भी दुनिया के तमाम मर्दों और औरतों के सामने रहना चाहिए कि नबी (सल्ल.) शौहर की हैसियत से हज़रत आइशा (रज़ि.) की ख़ुशी के लिए क्या कुछ करते थे।

एक बार ईद के दिन कुछ हब्शी आए। वे ख़ुशी में नेज़े हिला-हिलाकर पहलवानी के करतब दिखा रहे थे। बहादुरी के गीत भी गा रहे थे और डफ़ली बजाते जाते थे। नबी (सल्ल.) ने हज़रत आइशा (रज़ि.) से पूछा, "देखोगी ?" उन्होंने रज़ामन्दी ज़ाहिर की तो नबी (सल्ल.) दरवाज़े में खड़े हो गए और नबी (सल्ल.) की आड़ लेकर हज़रत आइशा (रज़ि.) खड़ी हो गईं और जी भरकर यह खेल देखा।

हज़रत आइशा (रज़ि.) ने एक लड़की को पाला था। फिर उसकी शादी की। शादी बड़ी सादगी से की। नबी (सल्ल.) आए तो फ़रमाया, "आइशा! कुछ गीत भी होने चाहिएँ।"

एक बार हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) बेटी के कमरे में आए। देखा तो हज़रत आइशा (रज़ि.) बढ़- बढ़कर नबी (सल्ल.) से बातें कर रही थीं। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) भला यह बात कैसे बरदाश्त कर सकते थे। बेटी पर हाथ उठाया तो नबी (सल्ल.) आड़े आ गए। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) गुस्से में बाहर चले गए। नबी (सल्ल.) ने हज़रत आइशा से कहा, "कहो आइशा, मैंने तुमको कैसा बचाया!" नबी (सल्ल.) अकसर हज़रत आइशा (रज़ि.) के साथ खाना खाते थे, तो एक ही बरतन में खाते थे। घर में चिराग़ नहीं था तो कभी-कभी एक ही चीज़ पर दोनों का हाथ पड़ जाता था। मुहब्बत के मारे नबी (सल्ल.) प्याले में वहीं मुँह लगाकर पीते थे जहाँ हज़रत आइशा (रज़ि.) मुँह लगाकर पीती थीं।

नबी (सल्ल.) हज़रत आइशा (रज़ि.) का दिल बहलाने के लिए कहानी भी सुनाया करते थे और उनसे भी सुनते थे। एक कहानी सुनिए जो हज़रत आइशा (रज़ि.) ने नबी (सल्ल.) को सुनाई। इससे ज़ाहिर है कि नबी (सल्ल.) को हज़रत आइशा (रज़ि.) की ख़ुशी का कितना ख़याल था। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने इस तरह कहानी कहनी शुरू की :

ग्यारह सहेलियाँ थीं। एक दिन वे सब मिलकर बैठीं। आपस में तय किया कि हर एक अपने-अपने शौहर का हाल ठीक-ठीक कह सुनाए। तो एक सहेली ने कहा कि मेरा शौहर ऊँट का ऐसा गोश्त है जो किसी पहाड़ पर रखा हो, न कि मैदान में कि उस गोश्त तक आसानी से कोई पहुँच सके। और गोश्त भी अच्छा

नहीं है जिसे कोई उठा ले जाए (यानी उसका किसी से मेल-जोल नहीं है)।

दूसरी बोली – मैं अपने शौहर का हाल बयान नहीं करूँगी। उसका क़िस्सा इतना लम्बा है कि मुझे डर है कि कुछ छोड़ न दूँ और मुझे यह पसन्द नहीं कि ढका-छिपा सब हाल न कहूँ।

तीसरी ने कहा – मेरा शौहर बड़ा सख़्त मिज़ाज है। कुछ कहती हूँ तो तलाक़ का डर है और चुप रहती हूँ तो तुम जानो कि मैं न तो ब्याही हूँ और न बिन ब्याही (यानी मुझसे बात तक नहीं करता)।

चौथी ने अपने शौहर का हाल इस तरह बयान किया कि मेरा शौहर हिजाज़ की रात की तरह है। न गर्म, न ठण्डा, न उससे डर न दुख। (यानी बहुत ही संजीदा, बोर कर देनेवाला)।

पाँचवीं ने कहा – मेरा शौहर घर में चीता और बाहर शेर है और न ही अपने वादे का ख़याल रखता है। (यानी मेरी यह हिम्मत नहीं कि उसे वादा याद दिलाऊँ)।

छठी बोली – मेरा शौहर बहुत पेटू है। साथ खाता है तो अकेला सब खा जाता है, पीता है तो ख़ुद ही सब पी जाता है। लेटते वक़्त ख़ुद सब चादर लपेट लेता है। उसे परवाह नहीं कि मैं किस हाल में हूँ।

सातवीं बोली – मेरा शौहर छूने में ख़रगोश की तरह नर्म और सूँघने में कुसुम है (यानी ज़ाहिर अच्छा, बातिन बुरा)।

आठवीं ने कहा – मेरा शौहर बेवक़ूफ़ और नामर्द है। कभी सिर फोड़ दे, कभी कुछ तोड़ दे (यानी उसमें बरदाश्त करने की ताक़त नहीं है)।

नौवीं ने कहा – मेरे शौहर का मकान बहुत बड़ा है, अमीर है। उसकी तलवार का परतला बहुत लम्बा है। उसके चूल्हे में राख का ढेर ही रहता है (यानी दानशील और मेहमान नवाज़ी करनेवाला है, दूसरों को ख़ूब खिलाता है)।

दसवीं बोली – मेरा शौहर मालिक है और तुम सब मालिक को क्या

समझीं, वह उन सबसे अच्छा है। उसके पास बहुत-से ऊँट हैं जो घर में पड़े रहते हैं, चरने नहीं जाते। बाजे की आवाज़ सुनकर समझें कि मौत आगई (यानी उसके नौकर तो बहुत हैं, सब पड़े-पड़े खाते हैं। लेकिन बड़े निकम्मे और डरपोक हैं)।

ग्याहरवीं ने कहा – मेरे शौहर का नाम अबू ज़रअ है। तुम सब अबू ज़रअ को क्या समझीं। उसने ज़ेवरों से मेरे कान और चर्बी से मेरे हाथ-कंधे भर दिए। मुझे इतना ख़ुश किया कि मैं ख़ुश हो गई। बकरीवालों के घराने (यानी ग़रीबों के घर) में मुझे पाया (मुझसे निकाह किया)। लेकिन हिनहिनानेवाले घोड़ों, बिलबिलानेवाले ऊँटों, ग़ल्ला मिलनेवाले और भटकनेवाले मज़दूरों में (ख़ुशहाली की ज़िन्दगी में) लाकर बिठा दिया। बोलती हूँ तो कोई बुरा नहीं कहता। सोती हूँ तो सुबह कर देती हूँ, पीती हूँ तो सब पी जाती हूँ। उम्मे ज़रअ कैसी है (यानी मैं ख़ुद)। उम्मे ज़रअ के कपड़ों की गठरी बहुत भारी है और उसके रहने के लिए बहुत बड़ा घर है। और अबू ज़रअ का बेटा कैसा है कि सोता है तो नंगी तलवार मालूम होता है। खाता है तो हलवान खाता है और अबू ज़रअ की बेटी कैसी है ? माँ-बाप का कहना माननेवाली, सौतन के लिए रश्क। और अबू ज़रअ की बाँदी कैसी है कि घर की बात बाहर नहीं दोहराती (राज़दार है), अनाज को बेकार नहीं करती, घर को कूड़े-करकट से नहीं भरती (साफ़ रखती है)।

नबी (सल्ल.) बड़े सब्र के साथ कहानी सुनते रहे, कहानी सुनकर फ़रमाया, "आइशा ! मैं तुम्हारे लिए वैसा ही हूँ जैसा अबू ज़रअ उम्मे ज़रअ के लिए।"

बेहद मुहब्बत, लेकिन ?

नबी (सल्ल.) को हज़रत आइशा (रज़ि.) से जो मुहब्बत थी उसका हल्का-सा नक़्शा ऊपर खींचा गया। नबी (सल्ल.) बीवी का दिल रखने के लिए सब कुछ करते थे। लेकिन हज़रत आइशा (रज़ि.) ही मुहब्बत का इक़रार करते हुए कहती हैं कि हम आपस में मुहब्बत की बातें करते होते कि अज़ान की आवाज़ आती। नबी (सल्ल.) बातें छोड़कर उठ खड़े होते, फिर ऐसा लगता कि नबी (सल्ल.) हमें पहचानते ही नहीं।

मतलब यह कि बीवी के हक़ों को बेशक अदा करना ज़रूरी है लेकिन जब अल्लाह का हक़ अदा करने का वक़्त आ जाए तो फिर उसके आगे कुछ नहीं। दुनिया जहान के तमाम मर्दों के लिए इसमें कितनी बड़ी नसीहत है। कुछ और बातें सुनिए –

हज़रत आइशा (रज़ि.) ख़ुद कहती हैं कि नबी (सल्ल.) तबूक की लड़ाई से कामयाबी के साथ वापस हुए तो मैंने ख़ुशी में बेल-बूटों और तस्वीरोंवाला परदा दरवाज़े पर लटका दिया। नबी (सल्ल.) आए तो परदा देखकर गुस्से से चेहरे का रंग बदल गया। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! क्या ख़ता हुई?" नबी (सल्ल.) ने जवाब दिया, "आइशा! हमें ईंट और मिट्टी सजाने के लिए दौलत नहीं दी गई है और कहा कि जिस घर में तस्वीरें हों, उस घर में फ़रिश्ते नहीं आते।"

रेशम और सोने का इस्तेमाल शरीअत में औरतों के लिए जाइज़ है लेकिन चूँकि नबी (सल्ल.) सादा ज़िन्दगी पसन्द करते थे और चाहते थे कि घर के लोग सादा ज़िन्दगी बिताएँ। घर के अन्दर दिखावा, बनावट और सजावट से नबी (सल्ल.) को सख़्त नफ़रत थी। एक बार हज़रत आइशा (रज़ि.) ने सोने के कंगन पहने। नबी (सल्ल.) ने देखा तो फ़रमाया, "आइशा इससे अच्छी चीज़ बताऊँ! तुम इन कंगनों को उतार दो और चाँदी के कंगन बनवाकर ज़ाफ़रान (केसर) का रंग चढ़ा दो।"

हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि नबी (सल्ल.) ने हमें पाँच चीज़ों को काम में लाने से रोका (1) रेशमी कपड़े से (2) सोने के ज़ेवर से (3) सोने-चाँदी के बरतन से (4) लाल व नर्म गद्दे से (5) सूती और रेशम के मिले-जुले कपड़े से।

हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि नबी (सल्ल.) ने हमें थोड़े-से सोने के लिए भी मना कर दिया था।

यह है नबी (सल्ल.) की तालीम और वह है नबी (सल्ल.) की मुहब्बत। कभी ऐसा नहीं हुआ कि मुहब्बत की वजह से दुनिया की दिलचस्पियों में हिस्सा

लेने से न रोका हो। आजकल नेक और परहेज़गार लोग यह शिकायत करते हैं कि हमारा घर दीन के मुताबिक़ नहीं चलता। बीवी-बच्चे वह नहीं करते जो हम चाहते हैं। सच्ची बात यह है कि सिर्फ़ चाहने से काम नहीं चलता। नसीहत की जाए और अमल कराया जाए और दीन पर चलाने के लिए हिकमत और हिम्मत से काम लिया जाना चाहिए। हम देखते हैं कि वे चीज़ें जो सजावट की हैं और जाइज़ हैं, उनके बारे में मर्द साफ़ कहते हैं कि जब शरीअत ने औरतों को इजाज़त दी है तो हम रोकनेवाले कौन ? इतना ही नहीं शरीअत की गुंजाइश से जान-बूझकर फ़ायदा उठाया जाता है। फ़ायदा उठाकर वे तमाम ख़ाहिशें पूरी की जाती हैं जो वे चाहती हैं। यह परहेज़गार और दीनदार घरानों ही में नहीं बल्कि उन घरानों में होता है जो दीन की दावत देनेवाले (दाई) की हैसियत रखते हैं और इस्लाम को आगे बढ़ाना उनकी तमन्ना है। ऐसे लोगों को नबी (सल्ल.) के घर से सबक़ लेना चाहिए। इसके बिना दीन की तब्लीग़ और दावत का काम बेअसर ही रहेगा।

नबी (सल्ल.) से मुहब्बत

हज़रत आइशा (रज़ि.) को नबी (सल्ल.) से कितनी मुहब्बत थी, इसका अन्दाज़ा उन बातों से लगाया जा सकता है जिनसे साबित होता है कि वे अपनी मुहब्बत के मुक़ाबले में किसी दूसरे की मुहब्बत को गवारा नहीं कर सकती थीं। 'बासाया तुरा नमी पसन्दम' वाली मिसाल यानी ऐ महबूब! मुझे यह भी पसन्द नहीं कि तेरे साथ तेरा साया भी देखूँ। हज़रत आइशा (रज़ि.) कोशिश करती थीं कि मुहब्बत में सबसे आगे बढ़ जाएँ।

इस तरह के क़िस्से बहुत हैं लेकिन यहाँ उनमें से वे क़िस्से चुनकर पेश किए जा रहे हैं जिनमें औरतोंवाली ख़ास झलक पाई जाती है। फिर औरतोंवाले इसी ख़ास जज़्बे में नबी (सल्ल.) की तालीम व तरबियत से सन्तुलन पैदा हुआ तो हज़रत आइशा (रज़ि.) दुनिया भर की औरतों के लिए बेहतरीन और मुकम्मल नमूना बन गईं।

रातों में हज़रत आइशा (रज़ि.) की आँख खुलती और वे नबी (सल्ल.) को न पातीं तो बेचैन हो जातीं। घर में चिराग़ तो जलता न था, अंधेरा होता।

नबी (सल्ल.) को टटोलने लगतीं फिर जब देखतीं कि नबी (सल्ल.) नमाज़ पढ़ रहे हैं तो ख़ुश हो जातीं। हज़रत आइशा (रज़ि.) ख़ुद कहती हैं कि एक बार ख़याल आया कि नबी (सल्ल.) किसी दूसरी बीवी के पास न चले गए हों, फिर जब नबी (सल्ल.) को घर में नमाज़ पढ़ते पाया तो बोलीं- "मेरे माँ-बाप क़ुरबान हों, मैं क्या सोच रही थी और नबी (सल्ल.) किस आलम में हैं।"

एक बार नबी (सल्ल.) रात में क़ब्रिस्तान गए तो हज़रत आइशा (रज़ि.) भी पीछे-पीछे गईं। फिर चुपके से चली आईं। सुबह बता भी दिया। नबी (सल्ल.) ने कहा, "मैंने किसी को काली चादर में देखा था, अच्छा तुम थीं।"

एक सफ़र में हज़रत आइशा (रज़ि.) और हज़रत हफ़्सा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के साथ थीं। नबी (सल्ल.) हज़रत आइशा (रज़ि.) के साथ ऊँट पर बैठते और जब तक क़ाफ़िला चलता, बातें किया करते। एक दिन हज़रत हफ़्सा (रज़ि.) ने हज़रत आइशा (रज़ि.) से कहा, "आओ हम दोनों अपना-अपना ऊँट बदल लें।" हज़रत आइशा (रज़ि.) नर्मी की वजह से हज़रत हफ़्सा (रज़ि.) की ख़ाहिश से इंकार न कर सकीं। नबी (सल्ल.) को मालूम न था, आप (सल्ल.) हज़रत आइशा (रज़ि.) के ऊँट पर बैठ गए। नबी (सल्ल.) ने उस ऊँट पर हज़रत हफ़्सा (रज़ि.) को देखा, सलाम किया और उनसे बातें करने लगे। अब हज़रत आइशा (रज़ि.) की बेचैनी की हालत अजीब थी। एक जगह पड़ाव हुआ तो अपने कजावे से उतरीं। घास पर पाँव रख दिए कि बिच्छू डस ले तो महबूब (शौहर) की जुदाई से यह अच्छा है।

इस क़िस्से में औरतपन की झलक कितनी नुमायाँ है। वही 'बासाया तुरा नमी पसन्दम' वाली बात। गहरी नज़र से देखा जाए तो यह ठीक सही। बेहद मुहब्बत होने का सुबूत सही फिर भी हज़रत आइशा (रज़ि.) के दिल के आईने में एक बाल पड़ा हुआ नज़र आता है। लेकिन नबी (सल्ल.) की तालीम व तरबियत से यह बाल निकल गया। तो देखिए हज़रत आइशा (रज़ि.) ही अपनी सौतनों के बारे में क्या कहती हैं और सौतनों का सुलूक हज़रत आइशा (रज़ि.) के साथ क्या होता है।

सौतनों के साथ

नबी (सल्ल.) ने ग्यारह औरतों से निकाह किया। नबी (सल्ल.) की पहली बीवी हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) थीं। जब तक वे ज़िन्दा रहीं, उस वक़्त तक नबी (सल्ल.) ने दूसरा निकाह नहीं किया। उनके इन्तिक़ाल के बाद दूसरी शादियाँ कीं।

(1) उम्मुल मोमिनीन हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) के बारे में सबको मालूम है कि वे मक्का के एक धनवान व्यक्ति ख़ुवैलद की बेटी थीं और ख़ुद भी बाअसर और धनवान औरत थीं। उनके अलावा जो औरतें नबी (सल्ल.) के निकाह में आईं वे ये हैं-

(2) उम्मुल मोमिनीन हज़रत सौदा (रज़ि.) बिन्त ज़मआ का सम्बन्ध आमिर बिन लुई क़बीले से था, जो क़ुरैश का बड़ा नामी ख़ानदान था। हज़रत सौदा (रज़ि.) उसी ख़ानदान के रईस की बेटी थीं जिस वक़्त नबी (सल्ल.) से उनकी शादी हुई तो उनका बुढ़ापा शुरू हो चुका था।

(3) उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) पहले ख़लीफ़ा हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) की चहेती बेटी थीं। हज़रत आइशा (रज़ि.) का जो स्थान इस्लामी इतिहास में है उसे बयान करने की ज़रुरत नहीं।

(4) उम्मुल मोमिनीन हज़रत हफ़्सा (रज़ि.) दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) की बेटी थीं। हज़रत उमर (रज़ि.) का नाम ही उनकी पहचान के लिए काफ़ी है।

(5) उम्मुल मोमिनीन हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) बिन्त खुज़ैमा। उम्मुल मसाकीन (मिस्कीनों की माँ) लक़ब था। क़ुरैश ख़ानदान से थीं, नबी (सल्ल.) की रिश्तेदार थीं।

(6) उम्मुल मोमिनीन हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि.) क़ुरैश के ख़ानदान मख़ज़ूम से थीं। मख़ज़ूम ख़ानदान बहुत मशहूर ख़ानदान था। हज़रत ख़ालिद और अबू जहल वग़ैरह इसी ख़ानदान के थे। उम्मे सलमा

(रज़ि.) के वालिद अबू उमैया क़ौम के रईस, बहुत दानी (फ़य्याज़) और मशहूर अदमी थे। 'ज़ादुर-राकिब' उनका लक़ब था यानी क़ाफ़िले वालों का ख़र्च उठानेवाले । इल्म व फ़ज़्ल में हज़रत आइशा (रज़ि.) के बाद हज़रत उम्मे सलमा ही का नम्बर है। बहुत ही खुद्दार औरत थीं।

(7) उम्मुल मोमिनीन हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) बिन्त जहश ये नबी (सल्ल.) की फूफी की लड़की थीं । इज़्ज़त और ऊँची शख़्सियत की मालिक थीं। नबी (सल्ल.) से क़रीबी रिश्ता था, इसपर उन्हें बड़ा गर्व था।

(8) उम्मुल मोमिनीन हज़रत उम्मे हबीबा, ये एक बड़े अमीर व्यक्ति, प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ व मक्का के सरदार अबू सुफ़ियान की बेटी थीं। आपने नबी (सल्ल.) पर ईमान लाकर बड़ी क़ुर्बानियाँ पेश कीं।

(9) उम्मुल मोमिनीन हज़रत जुवैरिया (रज़ि.) बिन्त हारिस, बनू मुस्तलिक़ ख़ानदान के सरदार की बेटी थीं। यह ख़ानदान बहादुरी में मशहूर था।

(10) उम्मुल मोमिनीन हज़रत मैमूना (रज़ि.), क़ुरैश ख़ानदान से थीं। उनका मरतबा इतना बुलन्द था कि जब उनके पहले शौहर का इन्तिक़ाल हो गया तो लोगों ने नबी (सल्ल.) से कहा कि हज़रत मैमूना आपके लायक़ हैं यानी आप (सल्ल.) उनसे शादी कर लें।

(11) उम्मुल मोमिनीन हज़रत सफ़िय्या (रज़ि.), हज़रत हारून (अलै.) की नस्ल से थीं और ख़ैबर के सरदारों में से क़बीला बनू नज़ीर के सरदार हई की बेटी थीं।

इस तरह हज़रत आइशा (रज़ि.) की दस सौतनें थीं और सब की सब ऊँचे ख़ानदान की थीं। बहुत ऊँचे मरतबेवाली थीं, निहायत खुद्दार और हयादार थीं। सबको नबी (सल्ल.) से मुहब्बत थी, सब दीन और अख़लाक़ में मज़बूत थीं। शक्ल व सूरत में कोई हज़रत आइशा (रज़ि.) से कुछ कम, कुछ उनके टक्कर की और कुछ उनसे बढ़ कर। और सब नबी (सल्ल.) की मुहब्बत की दावेदार। उन सबमें और हज़रत आइशा (रज़ि.) के बीच नोंक-झोंक रही, लेकिन यह नबी (सल्ल.) की सोहबत का असर था कि सबके दिल एक दूसरे की तरफ़ से आईने की तरह साफ़ थे। इस बात की गवाह ख़ुद हज़रत आइशा (रज़ि.) थीं। अगर

हज़रत आइशा (रज़ि.) अपनी सौतनों के बारे में कुछ न बतातीं तो आज उन सबका किरदार अंधेरे में होता। दुनिया की है कोई सौतन जो अपनी सौतनों के दर्जों को इस तरह बुलद करने की कोशिश करे, जिस तरह हज़रत आइशा (रज़ि.) ने किया। देखिए –

हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) के बारे में वे सारी हदीसे जिन से उनकी महानता और बड़ाई का पता चलता है, सब हज़रत आइशा (रज़ि.) ने बयान की हैं। नबी (सल्ल.) पर वह्य का नाज़िल होना, हज़रत खदीज़ा (रज़ि.) का ईमान लाना, नबी (सल्ल.) की नुबूवत की तसदीक़ (पुष्टिकरण) करना, जान व माल और औलाद की क़ुरबानी देना। नबी (सल्ल.) और आप के ख़ानदान के बायकाट के ज़माने में हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) की क़ुरबानियाँ। फिर उनके इन्तिक़ाल के बाद नबी (सल्ल.) का उनको याद करते रहना। यह सब हज़रत आइशा (रज़ि.) की ज़बान से ही हमें मालूम हुआ है। हज़रत आइशा (रज़ि.) यह सब बयान करने के बाद कहती हैं कि मुझे सबसे ज़्यादा उस बूढ़ी ख़ातून (हज़रत ख़दीजा) पर रश्क आया जिसे नबी (सल्ल.) कभी न भूले। काश! उनकी जगह मैं होती, हालाँकि मैंने उनको देखा भी नहीं। जी हाँ! यह एक सौतन एक सौतन की तारीफ़ कर रही है। क्या यह कुशादा दिली का बेहतरीन नमूना नहीं है? और क्या इसकी मिसाल कहीं और मिल सकती है?

हज़रत सौदा (रज़ि.) के बारे में हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि हज़रत सौदा (रज़ि.) का क़द बुलन्द व ऊँचा था। बड़ी-बड़ी सभाओं में वे नुमायाँ रहतीं। जिसने उनको देख लिया, उसने उनको पहचान लिया। नबी (सल्ल.) की पैरवी और हुक्म मानने में हर वक़्त लगी रहतीं थीं। सब से अच्छी बड़ी कुशादा दिल और दानी बीवी। अपने हँसमुख मिज़ाज से नबी (सल्ल.) के ग़म दूर करनेवाली। हज़रत आइशा (रज़ि.) बताती हैं कि वे कभी-कभी इस अन्दाज़ से चलतीं कि नबी (सल्ल.) (उदास होने पर भी) हँस पड़ते। एक बार कहने लगीं, "ऐ अल्लाह के रसूल! कल रात जब मैंने आपके साथ नमाज़ पढ़ी तो आप (सल्ल.) ने इतना लम्बा रूकूअ किया कि मुझको नकसीर फूटने का अन्देशा हुआ, इसलिए मैं देर तक अपनी नाक पकड़े रही। नबी (सल्ल.) ने यह सुना तो मुस्करा दिए।

चूँकि हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) के इन्तिक़ाल को थोड़ा ही वक़्त हुआ था और हज़रत आइशा (रज़ि.) कम उम्र थीं। हज़रत सौदा (रज़ि.) एक तरफ़ नबी (सल्ल.) के घर और बाल-बच्चों को संभालतीं दूसरी तरफ़ अपनी दिलचस्प बातों से नबी (सल्ल.) का दिल ख़ुश करतीं। हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि, "सौदा (रज़ि.) के अलावा किसी औरत को देखकर मुझे यह ख़याल नहीं हुआ कि उसके जिस्म में मेरी जान होती।"

इससे बढ़कर कोई किसी की क्या तारीफ़ कर सकता है। हज़रत आइशा (रज़ि.) अपनी सौतनों की ये तारीफ़ें करती हैं, सुबहानल्लाह! सौतनों से इतना लगाव!

हज़रत हफ़्सा (रज़ि.) के बारे में मशहूर है कि वे नबी (सल्ल.) से बड़ी तेज़ बातें करती थीं, (इस पर उनके वालिद हज़रत उमर (रज़ि.) ने उनको डाँटा भी था।) तो वे दूसरों का भला कब ख़याल करतीं। नबी (सल्ल.) की मुहब्बत में हज़रत आइशा (रज़ि.) से बराबर की दावेदार थीं। वह दिलचस्प वाक़िआ जो ऊँट बदलने का, पिछले पन्नों में पेश किया गया उसमें कितने मज़े का मनमुटाव पाया जाता है। लेकिन यही हफ़्सा (रज़ि.) हज़रत आइशा (रज़ि.) की राज़दार थीं। हज़रत आइशा (रज़ि.) अक्सर उनसे मशविरा करतीं। नबी (सल्ल.) से कोई बात मनवानी होती या फ़रमाइश करना होती तो दोनों की एक राय होती।

हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) बिन्त जहश जो नबी (सल्ल.) की रिश्तेदार थीं और बड़ी ख़ुद्दार भी। हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि सब बीवियों में यही मेरी बराबरी का दावा किया करती हैं।

एक मज़ेदार और उदारता की बात सुनिए। यही ज़ैनब (रज़ि.) जब नबी (सल्ल.) के निकाह में आईं तो हज़रत आइशा (रज़ि.) ने उनको मुबारकबाद पेश की और यही वह हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) हैं कि जब हज़रत आइशा (रज़ि.) पर मदीने के मुनाफ़िक़ों ने इल्ज़ाम लगाया तो ज़ैनब (रज़ि.) ने हज़रत आइशा (रज़ि) के बारे में नबी (सल्ल.) के सामने उनकी सफ़ाई पेश की। नबी (सल्ल.) ने उनसे हज़रत आइशा (रज़ि.) के बारे में राय ली तो साफ़-साफ़ कहा कि, "मैंने ख़ूबी के सिवा आइशा में और कुछ नहीं पाया।"

उस समय हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) के पास अपनी सौतन हज़रत आइशा (रज़ि.) को मात देने का कितना अच्छा मौक़ा था। लेकिन नबी (सल्ल.) की तालीम ने सौतनों को कितना उच्च स्वभाव और कुशादा दिल बना दिया था। हज़रत आइशा (रज़ि.) हमेशा हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) की तारीफ़ किया करती थीं और वह भी शुक्रगुज़ारी के साथ!

एक बार हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) ने हज़रत सफ़िया को यहूदिया कह दिया। उस पर नबी (सल्ल.) उनसे नाराज़ हो गए। बेचारी हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) बहुत घबराईं। अपनी दूसरी सौतन, जी हाँ, जिनसे रंजिश की वजह से टक्कर हुआ करती थी यानी हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास गईं और कहा, "मेरा क़ुसूर माफ़ करा दो।"

क्या अच्छा मौक़ा था कि उस वक़्त हज़रत आइशा (रज़ि.) अपनी सबसे बड़ी 'प्रतिद्वन्द्वी' को शिकस्त दे देतीं। नबी (सल्ल.) को और भड़का देतीं, लेकिन उन्होंने क्या किया?

हज़रत आइशा (रज़ि.) ने हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) से वादा किया फिर नबी (सल्ल.) से मिलने की तैयारी करने लगीं। दिल में तक़रीर तैयार करने लगीं जो नबी (सल्ल.) के सामने करनी थी। नबी (सल्ल.) की पसन्द के मुताबिक़ सादगी से बनाव-शृंगार किया। नबी (सल्ल.) आए तो सलीक़े से ऐसी तक़रीर शुरू की कि उसी वक़्त नबी (सल्ल.) हज़रत ज़ैनब से राज़ी हो गए।

और सुनिए! यह गवाही हज़रत आइशा (रज़ि.) की ज़बान से लोगों ने सुनी और उसने हदीस में जगह पाई।

हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि नबी (सल्ल.) ने अपनी ज़िंदगी में कहा था कि तुममें से (इन्तिक़ाल के बाद) सबसे पहले मुझ से वह आ कर मिलेगी जिसका हाथ सब से लम्बा होगा। इस सौभाग्य को हासिल करने के लिए हम आपस में हाथ नापा करती थीं (हमारा ख़याल था कि वे हज़रत सौदा (रज़ि.) हैं क्योंकि उनके हाथ हमसे लम्बे थे। लेकिन जब हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) का इन्तिक़ाल सबसे पहले हुआ तो हम समझे कि हाथ की लम्बाई का मतलब दरियादिली और सख़ावत है। हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) अपने हाथ से चमड़ा पकाने

और साफ़ करने का काम करती थीं। उस से जो आमदनी होती, ख़ैरात कर देती थीं। बेशक वे हम सबसे ज़्यादा दरियादिल थीं।) हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि मैंने कोई औरत ज़ैनब (रज़ि.) से ज़्यादा दीनदार, परहेज़गार, सच्ची, दरियादिल, ख़ैरात करनेवाली और अल्लाह की रज़ा (ख़ुशी) चाहनेवाली नहीं देखी।

हज़रत उम्मे हबीबा (रज़ि.) मक्का के सबसे बड़े सरदार की बेटी थीं। मख़ज़ूमी ख़ानदान ग़ुरूर व घमण्ड में सबसे आगे था। लेकिन जब इन्हीं उम्मे हबीबा (रज़ि.) के इन्तिक़ाल का वक़्त आया तो इन्होंने हज़रत आइशा (रज़ि.) को बुला भेजा और कहा, "सौतनों में कुछ न कुछ हो ही जाता है, अगर हममें तुम में कभी कुछ हुआ हो तो ख़ुदा हम दोनों को माफ़ करे।" हज़रत आइशा (रज़ि.) ने बड़ी हमदर्दी से कहा, "अल्लाह माफ़ करे।" उम्मे हबीबा (रज़ि.) ने दुआ दी, "तुमने मेरा दिल ख़ुश कर दिया, ख़ुदा तुम को ख़ुश रखे।"

हज़रत मैमूना (रज़ि.) के बारे में हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं– "वे हम में सबसे ज़्यादा परहेज़गार थीं।"

हज़रत सफ़िया (रज़ि.) के बारे में हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि मैने हज़रत सफ़िया (रज़ि.) से बेहतर खाना पकानेवाला नहीं देखा। फिर अपनी कमज़ोरी का ज़िक्र करती हैं। जी हाँ सौतन के मुक़ाबले में अपनी कमज़ोरी का। बुलन्द अख़्लाक का नमूना देखिए-

हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि एक दिन हम दोनों ने नबी (सल्ल.) के लिए खाना बनाना शुरू किया। सफ़िया (रज़ि.) ने जल्दी तैयार कर लिया और बहुत अच्छा। उनका खाना नबी (सल्ल.) के सामने पहले आ गया। मुझसे अपनी मुहब्बत और मेहनत की बरबादी देखी न गई। एक हाथ ऐसा मारा कि बाँदी के हाथ से प्याला छूट कर गिरा और टुकड़े-टुकड़े हो गया। नबी (सल्ल.) उठे और टुकड़े चुनने लगे, बाँदी से फ़रमाया, "तुम्हारी माँ को ग़ुस्सा आ गया।" हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं फिर मुझे बड़ा पछतावा हुआ। मैने पूछा: "ऐ अल्लाह के रसूल! अब क्या करूँ?" नबी (सल्ल.) ने जवाब दिया: "ऐसा ही प्याला और ऐसा ही खाना।"

इन्हीं सफ़िया (रज़ि.) को एक बार हज़रत आइशा (रज़ि.) ने भी छोटे क़दवाली कहा था। नबी (सल्ल.) ने सुनकर तंबीह की थी। हज़रत आइशा (रज़ि.) हज़रत सफ़िया (रज़ि.) की एक-एक बात की तारीफ़ करती हैं। वे उनकी सफ़ाई की तारीफ़ करती हैं, उनकी संजीदगी और सुघड़पन की तारीफ़ करती हैं। कोई बात आ पड़ती तो दोनों एक हो जातीं। एक-दूसरे को फ़ायदा पहुँचाने की कोशिश करतीं।

और इससे बड़ी बात क्या हो सकती है कि ख़ुद हज़रत आइशा (रज़ि.) यह कहती हैं कि एक बार हज़रत सफ़िया (रज़ि.) रो रही थीं। नबी (सल्ल.) ने पूछा: ''क्यों रो रही हो ?'' बोलीं- आइशा और हफ़्सा कहती हैं कि हम नबी (सल्ल.) की नज़रों में इज़्ज़त की ज़्यादा हक़दार हैं क्योंकि हम नबी (सल्ल.) की बीवियाँ भी हैं, और रिश्तेदार भी। यह सुनकर नबी (सल्ल.) ने तसल्ली दी और जवाब बताया। नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया: ''तुम कहतीं कि मुझ से ज़्यादा इज़्ज़तदार कैसे हो सकती हो, मेरे शौहर मुहम्मद (अल्लाह के नबी), मेरे बाप हारून (अल्लाह के नबी), मेरे चचा हज़रत मूसा (अल्लाह के नबी)।

ये सारे हालात हमें उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) की ज़बान से ही मालूम हुए। अपनी सौतनों की इज़्ज़त बढ़ाने में हज़रत आइशा (रज़ि.) का कितना हिस्सा है यह हम अन्दाज़ा नहीं कर सकते। अल्लाह ही जान सकता है अल्लाह ही जानता है। हज़रत आइशा (रज़ि.) के कम उम्री के ज़माने की जो बातें इस्लाह (सुधार) करने की थीं, नबी (सल्ल.) ने इस्लाह कर दी। उसके बाद उनमें जो मुहब्बत हुई वह ऊपर के हालात से मालूम होती है। उनमें औरतों के लिए बड़ी नसीहत है और अपनी इस्लाह के लिए बेहतरीन नमूना भी और मर्दों के लिए नबी (सल्ल.) का अमल भी । अब हमारा काम है कि उसी के मुताबिक़ अमल करें।

सौतेली औलाद के साथ सलूक

हज़रत आइशा (रज़ि.) की चार सौतेली बेटियाँ थीं। हज़रत ज़ैनब (रज़ि.), हज़रत रुक़ैया (रज़ि.), हज़रत उम्मे कुलसूम (रज़ि.) और हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.)। जब हज़रत आइशा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के घर आईं तो सिर्फ़ हज़रत फ़ातिमा कुँवारी थीं। बाकी तीनों बेटियों की शादी हो चुकी थी। हज़रत

फ़ातिमा (रज़ि.) को ही साथ रहने का मौक़ा मिला।

हज़रत आइशा (रज़ि.) को हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) से दिली मुहब्बत थी। इसका मतलब यह नहीं कि दूसरी बेटियों से वह मुहब्बत न थी। हज़रत आइशा (रज़ि.) हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) के बारे में कहती हैं कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया कि वह मेरी सबसे अच्छी लड़की थी। वह मेरी मुहब्बत में सताई गई। दीन के एक दुश्मन ने मौक़ा पाकर ऊँट पर से गिरा दिया था। उसी सदमे से वे शहीद हो गई थीं। हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) की एक बड़ी प्यारी बच्ची थी, उसका नाम उमामा था। उसे नबी (सल्ल.) बहुत प्यार करते थे। उसे गोद में बिठाते, मस्जिद ले जाते। नमाज़ पढ़ते तो उसे कन्धे पर बिठा लेते। एक बार कहीं से हार आया। नबी (सल्ल.) ने कहा कि यह हार उसे दूँगा जो मुझे सबसे ज़्यादा प्यारा होगा। लोग समझे कि वह हार हज़रत आइशा (रज़ि.) को मिलेगा लेकिन वह हार उमामा को मिला।

हज़रत आइशा (रज़ि.) के सामने हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) की शादी हज़रत अली (रज़ि.) से हुई। उस शादी में सब माओं ने ख़ुशी-ख़ुशी हिस्सा लिया। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने ख़ास तौर पर इन्तिज़ाम किया, घर को साफ़ किया, उसकी लिपाई-पुताई की, बिस्तर लगाया, खजूर की छाल धुनकर तकियों में भरी। छुहारे और मुनक़्क़े दावत में खिलाए। लकड़ी की एक अलगनी बनाकर दी कि उस पर कपड़े और मशक लटकाएँ। ये सब काम करने के बाद हज़रत आइशा (रज़ि.) कहतीं हैं कि बेटी फ़ातिमा (रज़ि.) की शादी से बेहतर मैने किसी की शादी नहीं देखी। हज़रत अली (रज़ि.) का कमरा हज़रत आइशा (रज़ि.) के कमरे की दीवार के बाद था। माँ-बेटी ने उस दीवार में बड़ा सा सूराख़ बना लिया था। उसी सूराख़ से माँ-बेटी बातें कर लिया करतीं थीं।

बेटी की तारीफ़ में हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि, "मैंने फ़ातिमा से बेहतरीन इंसान कोई नहीं देखा। उनके बाप के अलावा।"

एक साहब ने पूछा: "अम्मा! नबी (सल्ल.) को सबसे ज़्यादा किससे मुहब्बत थी?" हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जवाब दिया, "फ़ातिमा से।"

उन साहब के सवाल का जवाब तो हो गया लेकिन मुहब्बत में आदमी जवाब से आगे बढ़कर भी बात कहता है। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जवाब के साथ फ़रमाया कि, "मैंने नबी (सल्ल.) से हर बात में मिलता-जुलता हज़रत फ़ातिमा से ज़्यादा किसी को नहीं देखा यानी वे उसी तरह चलतीं जैसे नबी (सल्ल.) चलते थे। उसी तरह बैठतीं, मुस्करातीं, बातें करतीं जैसे नबी (सल्ल.) करते। वे नबी (सल्ल.) के पास आतीं तो नबी (सल्ल.) खड़े हो जाते, उनका माथा चूमते और अपनी जगह बिठाते। नबी (सल्ल.) उनके घर जाते तो वे उठ खड़ी होतीं, बाप का माथा चूमतीं और अपनी जगह बिठातीं।"

हदीसों में इस तरह की बहुत-सी बातें पाई जाती हैं। वे सब हज़रत आइशा (रज़ि.) के द्वारा ही बयान की गई हैं यानी हज़रत आइशा (रज़ि.) ने ही लोगों को बताई हैं।

यहाँ तक कि वह हदीस भी जिसमें ज़िक्र है कि हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) तमाम दुनिया की औरतों की सरदार हैं। यह घटना इस तरह है:-

हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि एक दिन हम सब बीवियाँ नबी (सल्ल.) के पास बैठी थीं। इतने में हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) सामने आईं। उनकी चाल-ढाल और नबी (सल्ल.) की चाल-ढाल में ज़रा भी फ़र्क़ न था नबी (सल्ल.) ने बड़ी मुहब्बत से पास बिठा लिया फिर उनके कान में कुछ कहा तो वे रोने लगीं। उनको रोता देखकर नबी (सल्ल.) ने फिर उनके कान में कुछ कहा तो वे हँसने लगीं। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने कहा: "फ़ातिमा! सब बीवियों को छोड़कर नबी (सल्ल.) तुमसे राज़ की बातें करते हैं और तुम रोती हो!" फिर जब नबी (सल्ल.) उठकर चले गए तो हज़रत आइशा (रज़ि.) ने राज़ पूछा। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) बोलीं कि मैं बाप का राज़ न खोलूँगी। फिर जब नबी (सल्ल.) का इन्तिक़ाल हो गया तो हज़रत आइशा (रज़ि.) ने हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) से कहा कि, "देखो फातिमा! मेरा तुमपर जो हक़ है उसका वास्ता देती हूँ। उस दिन की बात मुझसे कह दो।" हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) ने कहा, "हाँ अब बताऊँगी। नबी (सल्ल.) ने पहली बार मुझसे अपने इन्तिक़ाल की ख़बर दी थी तो मैं रोई थी। फिर नबी (सल्ल.) ने कान में कहा कि फ़ातिमा (रज़ि.) क्या

तुम को यह पसन्द नहीं कि तुम तमाम दुनिया की औरतों की सरदार बनो। यह सुनकर मैं हँसने लगी थी।''

देखिए तो कितना प्यार है माँ-बेटी में। क्या सौतेली औलाद के बारे में हज़रत आइशा (रज़ि.) का यह नमूना हमारी माँ-बहनों के लिए बेहतरीन नमूना नहीं है ?

शैतान की चाल

शैतान हमारा सबसे बड़ा दुशमन है और अच्छे कामों से रोकने तथा अच्छा काम करनेवालों को बदनाम करने के काम में वह अपने साथियों के साथ लगा हुआ है। उस दुश्मन ने बड़े-बड़ों को सीधे रास्ते से हटाने और उनके ऊपर झूठे आरोप लगवाकर उनके हौसले पस्त करने की कोशिश की। अपनी इस चाल में वह कामयाब हुआ और कभी नाकाम। उसने हज़रत आइशा (रज़ि.) जैसी नेक और ख़ुदातरस अल्लाह की बन्दी को भी अपना निशाना बनाया जिसकी तफ़्सील आगे आएगी। पहले शैतान की चाल को समझने के लिए मुनासिब लगता है कि कम से कम लफ़्ज़ों में शैतान की कहानी सुना दी जाए –

अल्लाह तआला ने हज़रत आदम (अलै.) का पुतला मिट्टी से बनाया। उस पुतले में जान डाली। हज़रत आदम (अलै.) एक ज़िन्दा इंसान हो कर उठे। अब अल्लाह तआला ने आसमान और ज़मीन में जो कुछ है सबको हुक्म दिया कि आदम (अलै.) को सजदा करें। सबने अल्लाह के हुक्म से आदम (अलै.) को सजदा किया। लेकिन जिन्नों में से कुछ ने आदम (अलै.) को सजदा करने से मना कर दिया। उन इनकार करनेवाले जिन्नों का सरदार वह जिन्न था जिसका नाम इबलीस या 'अश-शैतान' है। उससे अल्लाह तआला ने पूछा कि तूने मेरा हुक्म क्यों न माना? आदम (अलै.) को सजदा क्यों न किया? इबलीस ने जवाब दिया: "मुझको तूने आग से बनाया, और उसे (आदम (अलै.) को) मिट्टी से पैदा किया। मैं उससे बढ़कर हूँ।" अल्लाह तआला ने शैतान का यह घमण्ड देखा तो उसे हमेशा के लिए लानती (फिटकारा हुआ) ठहरा दिया। अल्लाह तआला की फिटकार सुनकर शैतान से यह तो नहीं हुआ कि वह माफ़ी माँग लेता, वह अल्लाह की रहमत से ना उम्मीद हो गया। उसके दिल में आदम (अलै.) से जलन पैदा हो गई, फिर उसने अल्लाह तआला के सामने बड़ी ढिठाई से बातें कीं। शैतान ने कहा, "अच्छा अब मैं तेरे इस चहेते को तेरा नाफ़रमान बनाकर छोड़ूँगा। मैं छिप-छिप कर आगे से, पीछे से, दाएँ से, बाएँ से, उसका हमदर्द बनकर, ज़ाहिर में नेकी का लबादा ओढ़कर जैसे भी मुझसे हो सकेगा बुराई की तरफ़ मोड़ूँगा उसे अपने जैसा लानती बनाकर छोड़ूँगा।"

वह दिन है और आज का दिन और क़ियामत तक जहाँ-जहाँ आदम (अलै.) की औलाद थी और आज है और जहा रहेगी शैतान अपने साथियों के साथ मिलकर उस पर हमला करता रहा, करता रहता है और करता रहेगा। जो लोग उस शैतान के बहकाने में आ गए और आएँगे, उनमें शैतान अपनी तीनों बड़ी बुराइयाँ पैदा करता रहा, पैदा करता रहता है और पैदा करता रहेगा। उन्हीं तीनों बुराइयों से दूसरी बुराइयाँ पैदा होती रहीं, पैदा होती रहती हैं और पैदा होती रहेंगी। उन तीनों बुराइयों के नाम हैं (1) घमण्ड या तकब्बुर यानी मैं बड़ा हूँ। (2) हसद या ईर्ष्या यानी दूसरी की बड़ाई देखकर दिल ही दिल में जलना। (3) अल्लाह की रहमत से मायूस (नाउम्मीद) हो जाना। जिस इंसान में ये तीनों बड़ी बुराइयाँ पैदा होती हैं फिर वह उन बुराइयों से पैदा होने वाली दूसरी बुराइयों में फँसे बग़ैर नहीं रहता। पक्का शैतान बन जाता है। शैतान की सारी शैतनत (शैतानी फ़ितरत) उसमें आ जाती है। इसी शैतान ने जब मदीने की गलियों में चक्कर लगाया तो इंसानों के रूप में बड़े-बड़े घमण्डी शैतानों को जन्म दिया। ऐसे शैतानों को जिन्होंने अल्लाह के आख़िरी नबी (सल्ल.) के मुक़ाबले में अश-शैतान यानी इबलीस की चुनौती की याद दिला दी। आगे से, पीछे से, दाएँ से, बाएँ से, बड़े मिस्कीन और भोले बनकर, बड़े हमदर्द बनकर शैतान का रोल अदा किया। इसमें नाकाम हुए तो दिल में नबी (सल्ल.) के दुश्मन बनकर ज़बान से मुसलमान होने का एलान किया और पक्के मुनाफ़िक़ बन गए। उन मुनाफ़िक़ों का सरदार था अब्दुल्लाह बिन उबई, जो घमण्ड, नाकामी और ईर्ष्या का मुकम्मल नमूना था। उसकी कहानी दिलचस्प भी है, और सबक़ और नसीहत लेने लायक़ भी। यहाँ बहुत मुख़्तसर तौर पर उसकी कहानी और उसके कुछ कारनामे बयान किए जा रहे हैं।

और वह मुँह देखता रह गया.....

मदीना में दो ख़ानदान थे। एक औस, दूसरा ख़ज़रज। औस और ख़ज़रज एक ही आदमी की नस्ल से थे। दोनों ख़ानदानों के लोग सैकड़ों बल्कि हज़ारों की गिनती में मदीने के अन्दर बसे हुए थे। ये अपने दुश्मन क़बीलों से लड़ा करते थे। उनसे फ़ुर्सत पाते तो आपस में झगड़ा करते। आख़िर थक हारकर तय किया कि हमें पुरानी दुश्मनी ख़त्म करके एक झण्डे के नीचे आ जाना चाहिए। हम सबमें से

जिसे सब बड़ा मान लें, उसी को अपना बादशाह बनाकर उसके सिर पर ताज रख देना चाहिए और उसकी सरदारी में दुश्मनों से लड़ना चाहिए।

दोनों ख़ानदानों में यह बात तय हो गई। सबने ख़ज़रज ख़ानदान के एक धनवान व्यक्ति को बादशाह बनाने के लिए चुन लिया और उसके सिर पर ताज रखने के लिए दिन तय कर दिया। इस ख़ज़रजी रईस (धनवान व्यक्ति) का नाम था अब्दुल्लाह बिन उबई। अब्दुल्लाह बिन उबइ ताजपोशी के दिन का इन्तिज़ार बड़ी बे-सब्री से करने लगा।

अब्दुल्लाह बिन उबइ की क़िस्मत का खेल देखिए। उन्हीं दिनों में मदीना के बहुत से लोग अल्लाह के रसूल (सल्ल.) और इस्लाम से परिचित हुए और मुसलमान हो गए। उन्होंने नबी (सल्ल.) को मदीना आने की दावत दी। नबी (सल्ल.) ने अपने साथी मुसलमानों को मदीना भेजना शुरू कर दिया फिर नबी (सल्ल.) ख़ुद भी मदीना पहुँच गए। नबी (सल्ल.) के आने पर मदीना के लगभग सारे लोगों ने इस्लाम क़बूल कर लिया। नबी (सल्ल.) ने मदीना पहुँचकर इस्लामी हुकूमत की बुनियाद डाल दी और मक्का के मुहाजिरीन (मक्का से मदीना जानेवाले) और मदीने के अंसार (औस व ख़ज़रज दोनों ख़ानदानों) ने नबी (सल्ल.) को इस्लामी हुकूमत का सरदार मान लिया। अब्दुल्लाह बिन उबइ मुँह ताकता रह गया। उसके सिर पर ताज रखने को कुछ ही दिन बाक़ी थे कि मदीने में इंक़िलाब आ गया।

इतना ही नहीं कि वह बादशाह न बन सका, उसके लिए अब कोई ऐसी राह नहीं रह गई थी कि वह आज़ादी से अपनी मर्ज़ी चला सकता। जब पूरी बस्ती मुसलमान हो जाए और, ख़ुद अब्दुल्लाह बिन उबइ के बड़े बेटे अब्दुल्लाह बिन उबई, नबी (सल्ल.) पर जान न्यौछावर करनेवालों में शामिल हो जाएँ तो उसके सामने इसके सिवा कोई रास्ता नहीं रहा कि वह दिल में अल्लाह के नबी, अल्लाह के दीन और अल्लाह के बन्दों का दुश्मन बनकर ज़बान से इस्लाम क़बूल कर ले यानी मुनाफ़िक़ बनकर रहे और उसने ऐसा ही किया। उसने मुसलमानों को नीचा दिखाने और इस्लाम को मिटाने की कोशिशें शुरू कर दीं। यहाँ हम उसके सारे कारनामे तो बयान न कर सकेंगे, लेकिन उसकी शैतानी फ़ितरत की बड़ी-बड़ी बातें कुछ ऐसे वाक़िआत के साथ लिखते हैं जिनसे हालात

समझने में आसानी हो। ऐसे हालात को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि कहा जाता है यानी उन हालात के पीछे कहानी क्या है ?

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि

दुष्ट लोगों की आदत होती है कि जब वे दूसरों की अच्छाइयाँ और अपनी बुराइयाँ साफ़-साफ़ देख लेते हैं और यह जान लेते हैं कि उसकी अच्छाइयाँ उसे ऊँचा उठा रही हैं और उनकी अपनी बुराइयाँ उन्हें नीचे गिरा रही हैं तो वे ऐसा तो नहीं करते कि अपनी बुराइयों को दूर करके शरीफ़ और नेक लोगों की तरह बन जाएँ, इसके विपरीत वे यह करते हैं कि जिस तरह हो, उसके अन्दर भी अपनी ही जैसी बुराइयाँ पैदा कर दें और अगर न कर सकें तो उसके बारे में झूठी अफ़वाहें उड़ाएँ। झूठी बातें फैलाकर उसे बदनाम करने की कोशिश करें। यही भूमिका अब्दुल्लाह बिन उबइ ने अल्लाह के दीन, अल्लाह के नबी और अल्लाह के नेक बन्दों के साथ निभाई। नबी (सल्ल.) और अरब के इस्लाम-विरोधियों के बीच जो लड़ाइयाँ हुईं, उन सब में अब्दुल्लाह बिन उबइ ने मुनाफ़िक़त का सुबूत दिया। जब नबी (सल्ल.) मदीना में आए तो मक्का के इस्लाम-दुश्मनों ने अब्दुल्लाह बिन उबइ के पास कहलवा भेजा कि नबी (सल्ल.) और उनके साथियों को मदीना से निकाल दो। अब्दुल्लाह बिन उबइ ने कहा कि मैं इससे अच्छा उपाय बताऊँ, तुम उधर से मदीना पर हमला करो, इधर मैं हाथ खींच लूँ, उन सबको मौत के घाट उतार दो।

अब्दुल्लाह बिन उबइ यही उपाय मदीना के आस-पास बसनेवाले यहूदियों को बताया करता था। चुनाँचे मक्का के कुरैश ने अब्दुल्लाह बिन उबइ से मदद की उम्मीद से नबी (सल्ल.) से कई लड़ाइयाँ लड़ीं। लेकिन अल्लाह तआला ने नबी (सल्ल.) को ही कामयाब किया। फिर सारा अरब मदीना पर उमड़ आया और मुसलमानों से वह मशहूर जंग हुई जिसे ख़ंदक़ की लड़ाई या जंगे-अहज़ाब कहते हैं। ये लड़ाई मुसलमानों के लिए बहुत ख़तरनाक थी। लेकिन अल्लाह तआला ने उस लड़ाई में भी मुसलमानों को कामयाबी दी। सारे अरब की यह मिली-जुली कोशिश नाकाम हो गई और फिर नबी (सल्ल.) के आदेश से मुसलमानों ने आगे बढ़कर मक्का को जीत लिया और फिर सारे अरब में इस्लाम का झण्डा लहराने लगा।

ये सब देखकर अब्दुल्लाह बिन उबइ के सीने पर साँप लोटने लगे। मुसलमानों की ताक़त को ताक़त के बल पर न दबा सका तो झूठी अफ़वाहों पर उतर आया जो शैतान, ईर्ष्या करनेवालों और नाकाम लोगों से कराता है।

शाबान, 6 हिजरी में अब्दुल्लाह बिन उबइ को मुसलमानों के अन्दर फूट डाल देने का बड़ा अच्छा मौक़ा हाथ आया था। अगर अल्लाह की मदद मुसलमानों के साथ न होती तो यह ज़ालिम मुसलमानों को आपस में लड़ा ही चुका था।

बात यह हुई कि एक अभियान पर नबी (सल्ल.) ख़ुद गए। अब्दुल्लाह बिन उबइ अपनी टोली के साथ उस अभियान में साथ गया। नबी (सल्ल.) ने यह अभियान 'मरीसी' नामक जगह पर पूरा किया और वहीं पड़ाव डाल दिया। यहीं हज़रत उमर (रज़ि.) के ग़ुलाम जहजाह और ख़ज़रज के हलीफ़ (जिससे समझौता हो चुका हो) सनान में पानी की बात पर झगड़ा हो गया। सनान ने अंसार को मदद के लिए पुकारा और जहजाह ने मुहाजिरीन को पुकारा। दोनों तरफ़ से लोग इकट्ठा हो गए। मामला रफ़ा-दफ़ा कर दिया गया लेकिन अब्दुल्लाह बिन उबइ ने बात का बतंगड़ बना दिया। उसने अंसार को ये कहकर भड़काना शुरू कर दिया कि ये मुहाजिरीन हम पर टूट पड़े हैं और हमारे दुश्मन बन बैठे हैं। हमारी और उनकी मिसाल ऐसी है कि कुते को पालो फिर वही तुम को नोच ले। ये सब तुम्हारा अपना किया धरा है। तुमने ख़ुद लाकर उन्हें बसाया है और उनको अपने माल और जायदाद में हिस्सेदार बनाया है। आज तुम उनसे हाथ खींच लो, तो ये चलते-फिरते दिखाई दें।

फिर उसने क़सम खाकर कहा कि मदीना पहुँचकर जो हम में इज़्ज़तदार है वह ज़लील लोगों को निकाल बाहर करेगा। अब्दुल्लाह बिन उबइ की इन बातों की ख़बर नबी (सल्ल.) को हुई तो हज़रत उमर (रज़ि.) ने मशविरा दिया कि उस नालायक़ को क़त्ल कर देना चाहिए। लेकिन नबी (सल्ल.) ने कहा, "उमर! दुनिया क्या कहेगी, यही कि मुहम्मद ख़ुद अपने साथियों को क़त्ल कर रहे हैं।" यह कहकर नबी (सल्ल.) ने फ़ौरन मरीसी से चलने का हुक्म दे दिया। रास्ते में मदीने के एक अंसार रईस हज़रत उसैद बिन हुज़ैर ने नबी (सल्ल.) से कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आज आपने बेवक़्त चलने का हुक्म दे दिया।"

नबी (सल्ल.) ने जवाब दिया: "तुम ने सुना नहीं कि तुम्हारे साहब ने क्या बातें की हैं।" उसने पूछा, "वह कौन?" नबी (सल्ल.) ने बताया: "अब्दुल्लाह बिन उबई।" उसैद ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! उसकी बातों को छोड़िए। यह तो वह है कि जब आप (सल्ल.) मदीना नहीं आए थे, तो हम लोग उसे अपना बादशाह बनाने का फ़ैसला कर चुके थे। उसके लिए ताज तैयार हो रहा था कि आप (सल्ल.) आ गए और उसका बना बनाया खेल बिगड़ गया। यह कमबख़्त उसी की जलन निकाल रहा है।"

हज़रत आइशा (रज़ि.) पर लाँछन लगाना

नबी (सल्ल.) को बदनाम करने और मुसलमानों को आपस में लड़ाने की घटनाएँ पिछले पृष्ठों में बयान की गईं अब एक घटना और सुनिए–

अब्दुल्लाह बिन उबइ यह बात अच्छी तरह जान गया था कि मुसलमानों में दो इंसान ऐसे हैं जो नबी (सल्ल.) के विशेष सलाहकार हैं। उन दोनों की मदद ही से मुसलमान मज़बूती से एकता-सूत्र में बंधे हैं। अगर उन्हें नबी (सल्ल.) से लड़वा दिया जाए तो मुसलमानों की एकता की लड़ी बिखर जाएगी। ये दोनों हैं अबू बक्र (रज़ि.) और उमर (रज़ि.)। एक आइशा (रज़ि.) के बाप, दूसरे हज़रत हफ़्सा (रज़ि.)के। चूँकि ये दोनों औरतें नबी (सल्ल.) की बीवियाँ थीं इस रिश्ते से ये दोनों बुज़ुर्ग नबी (सल्ल.) के ससुर भी थे। ज़ाहिर है यह मान कोई कम न था।

इसी सफ़र में जिसका ज़िक्र ऊपर आ चुका है, अब्दुल्लाह बिन उबइ को इतना बड़ा फ़ितना फैलाने का मौक़ा मिल गया कि इस्लामी समाज की चूलें हिल गईं। अगर उस वक़्त अल्लाह की मदद मुसलमानों के साथ न होती और नबी (सल्ल.) पर जान न्यौछावर करनेवाले सहाबा समझबूझ से काम न लेते तो मदीना में आपसी झगड़े होने लगते। यह फ़ितना था हज़रत आइशा (रज़ि.) पर लाँछन लगाने का। यह घटना हज़रत आइशा (रज़ि.) की ज़बान ही से सुनिए और बड़े सब्र और इत्मीनान से पढ़िए और अब्दुल्लाह बिन उबइ की दुष्टता को देखिए। हज़रत आइशा (रज़ि.) उस घटना को इस तरह बयान करती हैं–

"नबी (सल्ल.) का नियम था कि जब आप सफ़र पर जाने लगते तो

क़ुरआ (पर्ची) डालकर फ़ैसला करते कि आप (सल्ल.) की बीवियों में से कौन आप (सल्ल.) के साथ जाए। बनी मुस्तलिक़ की लड़ाई के मौक़े पर (मरीसी के अभियान में) क़ुरआ मेरे नाम निकला और मैं नबी (सल्ल.) के साथ गई। वापसी पर जब हम मदीना के क़रीब थे, एक जगह रात के वक़्त नबी (सल्ल.) ने पड़ाव डाला। अभी रात का कुछ हिस्सा बाक़ी था कि चलने की तैयारियाँ होने लगीं। मैं उठकर शौच के लिए गई। पलटने लगी तो पड़ाव के पास पहुँचकर मैंने देखा कि मेरे गले का हार टूटकर कहीं गिर पड़ा है। मैं उसे ढूँढने लगी, इतने में क़ाफ़िला रवाना हो गया। नियम यह था कि मैं पड़ाव के चलने के वक़्त अपने हौदे (पालकी) में बैठे जाती थी और चार आदमी उसे उठाकर ऊँट पर रख देते थे। हम औरतें उस वक़्त खाने-पीने की कमी की वजह से बहुत हल्की फुलकी थीं। मेरा हौदा उठाते वक़्त लोगों को यह महसूस ही न हुआ कि मैं उसमें नहीं हूँ। वे बेख़बरी में ख़ाली हौदा ऊँट पर रखकर चले गए। मैं जब हार लेकर पलटी तो वहाँ कोई न था। आख़िर अपनी चादर ओढ़कर वहीं लेट गई और दिल में सोच लिया कि आगे जाकर जब ये लोग मुझे न पाएँगे तो ख़ुद ही ढूँढते हुए आ जाएंगे। इसी हालत में मुझे नींद आ गई। सुबह के वक़्त सफ़वान बिन मुअत्तल सल्लमी (ये बुज़ुर्ग सहाबा में से थे। जिन्होंने बद्र की जंग में नबी (सल्ल.) का साथ दिया था। बदरी सहाबा के बारे में अल्लाह ने अपनी ख़ुशनूदी की सनद क़ुरआन में दे दी है।) उनको नबी (सल्ल.) ने इस काम पर लगाया था कि वे क़ाफ़िला रवाना होने के बाद गिरी-पड़ी चीज़ें और छूट जानेवाले लोगों की हिफ़ाज़त करें। हज़रत सफ़वान इसी लिए क़ाफ़िला रवाना होने के बाद पड़ाव देख लिया करते थे। तो जब सुबह को ये बुज़ुर्ग उस जगह से गुज़रे जहाँ मैं सो रही थी तो देखते ही पहचान गए क्योंकि परदे का हुक्म आने से पहले वे मुझे देख चुके थे। मुझे देखकर उन्होंने ऊँट रोक लिया और बेसाख़्ता उनकी ज़बान से निकला, "इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन। नबी (सल्ल.) की बीवी यहीं रह गईं।" इस आवाज़ से मेरी आँख खुल गई और मैंने फ़ौरन अपने मुहँ पर चादर डाल ली। उन्होंने मुझ से कोई बात न की। ऊँट लाकर मेरे पास बिठा दिया और अलग हटकर खड़े हो गए। मैं ऊँट पर सवार हो गई। वे नकेल पकड़ कर चल दिए। दोपहर के वक़्त हमने क़ाफ़िले को पा लिया, जब कि वह एक जगह जाकर ठहरा ही था और क़ाफ़िलेवालों को अभी यह पता ही न चला था कि मैं पीछे छूट गई

हूँ। इसपर लाँछन लगाने वालों ने लाँछन लगा दिया। उनमें सबसे आगे अब्दुल्लाह बिन उबइ था। लेकिन मुझे कुछ भी पता न था कि मेरे बारे में क्या बातें हो रही हैं। मदीना पहुँचकर मैं बीमार हो गई। एक महीने तक पलँग पर पड़ी रही। शहर में उस लाँछन की ख़बरे उड़ रही थीं। नबी (सल्ल.) के कानों तक बात पहुँच चुकी थी मगर मुझे कुछ भी पता न था। हाँ जो चीज़ मुझे खटकती थी वह यह थी कि नबी (सल्ल.) का ध्यान मेरी तरफ़ वैसा न था जैसा मेरी बीमारी के वक़्त हुआ करता था। नबी (सल्ल.) घर में आते, तीमारदारों (देख-भाल करनेवालों) से सिर्फ़ यह पूछ लिया करते कि ये कैसी हैं? ख़ुद मुझसे कोई बात न करते। इससे मुझे शक हुआ कि कोई बात ज़रूर है, फिर मैं नबी (सल्ल.) से इजाज़त लेकर अपनी माँ के घर चली गई ताकि वे मेरी देख-भाल अच्छी तरह कर सकें।

एक दिन रात के वक़्त शौच के लिए मैं मदीना से बाहर गई। उस वक़्त तक हमारे घरों में शौचालय न थे और हम लोग जंगल ही जाया करते थे। मेरे साथ मिसतह बिन उसासा की माँ भी थीं। ये मेरे वालिद अबू बक्र (रज़ि.) की ख़ाला ज़ाद बहन थीं (उस पूरे ख़ानदान का ख़र्च हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) दिया करते थे) रास्ते में उनको ठोकर लगी और अचानक उनकी ज़बान से निकला "मिसतह बरबाद हो"। मैने कहा- "अच्छी माँ हो, जो अपने बेटे को कोसती हो और बेटा भी वह जो बदरी सहाबी है, बद्र की लड़ाई में इस्लाम-दुश्मनों से लड़ चुका है।" उन्होंने कहा-"बिटिया! क्या तुझे उसकी बातों की कुछ ख़बर नहीं!" मैंने पूछा-"क्या?" उन्होंने जवाब दिया कि, "तुझे सफ़वान के साथ बदनाम कर दिया गया है।" यह सुनकर मेरा ख़ून ख़ुश्क हो गया। जिस ज़रूरत से जा रही थी उसे भी भूल गई। सीधी घर लौटी और सारी रात रो-रोकर काटी।

इस लाँछन की अफ़वाहें कम-ज़्यादा एक महीने तक शहर में उड़ती रहीं। नबी (सल्ल.) बहुत परेशान थे। मुझे रोने के सिवा कोई काम न था। मेरे माँ-बाप बहुत परेशान और दुखी रहते। उस मुद्दत में नबी (सल्ल.) ने क़ुरैशी लोगों से पूछताछ भी की। हज़रत उसामा बिन ज़ैद ने मेरे हक़ में बड़ी अच्छी बात कही, उन्होंने कहा: "ऐ अल्लाह के रसूल! भलाई के सिवा आपकी बीवी आइशा (रज़ि.) में कोई चीज़ हमने नहीं पाई। यह सब झूठ है जो उड़ाया जा रहा

है।'' अली (रज़ि.) ने कहा, ''अगर आप उन अफ़वाहों से प्रभावित हों तो आपके लिए औरतों की कमी नहीं। आप (सल्ल.) उनकी जगह दूसरी बीवी कर सकते हैं, ज़्यादा अच्छा तो यह है कि बाँदी को बुलाकर पूछ लीजिए।''

नबी (सल्ल.) ने बांदी को बुलाया। बाँदी ने कहा-'' उस ख़ुदा की क़सम जिसने आप को सच्चाई के साथ भेजा है, मैंने उनमें कोई बुराई नहीं देखी जिसपर उँगली रखी जा सके। बस इतना ऐब है कि आटा गूँध कर किसी काम को जाती हूँ और कह जाती हूँ कि बीबी ज़रा आटे का ख़याल रखना मगर वे सो जाती हैं और बकरी आकर आटा खा जाती है।'' नबी (सल्ल.) ने अपनी दूसरी बीवियों से भी पूछा । हज़रत आइशा (रज़ि.) दूसरी पाक बीवियों की सौतन थीं और सबसे ज़्यादा नबी (सल्ल.) को प्यारी। ऐसी सौतन को नीचा दिखाने का मौक़ा इससे अच्छा और कौन-सा आ सकती था। लेकिन सबने कानों पर हाथ रखा यानी हम नहीं जानते, हमने आइशा (रज़ि.) में अच्छाई के सिवा कुछ नहीं पाया। उन सौतनों में हज़रत ज़ैनब बिन्त जहश (रज़ि.) थीं। उनको नबी (सल्लं.) से रिश्तेदारी का दावा था। वे हज़रत आइशा (रज़ि.) से बराबरी का दावा किया करती थीं। उनसे पूछा गया। उन्होंने भी यही कहा कि, ''मैं आइशा में नेकी के सिवा और कुछ नहीं जानतीं।''

अब नबी (सल्ल.) ने मुसलमानों को पुकारा ''मुसलमानो ! कौन है जो उस इंसान (अब्दुल्लाह बिन उबई) के हमलों से मेरी इज़्ज़त बचाए, जिसने मेरे घर वालों पर इलज़ाम लगाकर मुझे दुख पहुँचाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। ख़ुदा की क़सम न मैंने अपनी बीवी में कोई बुराई देखी और न उस शख़्स में जिसके बारे में लाँछन लगाया जाता है। वह तो मेरी ग़ैर-मौजूदगी में मेरे घर आया भी नहीं।''

यह सुनकर (अंसार के औस ख़ानदान के रईस) उसैद बिन हुज़ैर (रज़ि.) ने उठकर कहा, ''ऐ अल्लाह के रसूल ! अगर वह हमारे क़बीले का आदमी है तो हम उसकी गर्दन मार दें और अगर हमारे भाई ख़ज़रजों में से है तो नबी आप हुक्म दें, हम हुक्म पर अमल करने के लिए तैयार हैं।''

(हज़रत उसैद (रज़ि.) से) यह सुना तो ख़ज़रज़ के रईस उबादा (रज़ि.) उठ खड़े हुए और कहने लगे, ''झूठ कहते हो तुम हरगिज़ उसे नहीं मार सकते। तुम

उसकी गर्दन मारने का काम इसलिए ले रहे हो कि वह ख़ज़रज में से है। अगर वह (यानी अब्दुल्लाह बिन उबई) तुम्हारे क़बीले का आदमी होता तो तुम कभी न कहते कि हम उसकी गर्दन मार देंगे।''

उसैद बिन हुज़ैर (रज़ि.) ने जवाब में कहा, ''तुम मुनाफ़िक़ हो, इसलिए मुनाफ़िक़ों की तरफ़दारी करते हो।'' इस बात पर मस्जिद में हँगामा मच गया, जबकि नबी (सल्ल.) सामने मिम्बर पर थे। क़रीब था कि औस और ख़ज़रज वाले आपस में लड़ पड़ें, मगर नबी (सल्ल.) ने उनको शान्त किया और मिम्बर से उतर आए (ग़ौर कीजिए शैतान और उसके साथी कितने ज़हीन होते हैं। अब्दुल्लाह बिन उबइ ने कैसी शैतानी चाल चली थी कि एक तीर से कई शिकार हों।)

एक तरफ़ तो शैतान ने नबी (सल्ल.) और हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) की इज़्ज़त पर हमला किया। दूसरी तरफ़ उसने इस्लामी आंदोलन की बुलन्दी को गिराने की भरपूर कोशिश की। तीसरी तरफ़ उसने ऐसी चिंगारी फेंकी थी कि अगर अल्लाह की रहमत न होती तो अंसार के दोनों क़बीले औस और ख़ज़रज आपस में कट मरते। उसके बाद फिर हज़रत आइशा (रज़ि.) की ज़बानी सुनिए, कहती हैं कि–

''आख़िरकार एक दिन नबी (सल्ल.) मेरी माँ के घर आए। मेरे पास बैठे, उस पूरे वक़्त में आप (सल्ल.) कभी मेरे पास न बैठे थे। मेरे माँ-बाप (हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) और उम्मे रूमान (रज़ि.)) समझ गए कि आज फ़ैसला होने वाला है। इसलिए वे दोनों भी आकर बैठ गए। नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, ''आइशा! तुम्हारे बारे में फ़लाँ-फ़लाँ ख़बरें पहुँची हैं अगर तुम बेगुनाह हो तो उम्मीद है कि अल्लाह तुम्हारे बारे में ख़ुद सफ़ाई ज़ाहिर कर देगा और अगर सचमुच तुम से गुनाह हो गया हो तो अल्लाह से तौबा करो और माफ़ी माँगो। बन्दा जब अपने गुनाह को क़बूल करके तौबा करता है तो अल्लाह तआला माफ़ कर देता है।'' यह बात सुनकर हज़रत आइशा (रज़ि) कहती हैं कि मेरे आँसू ख़ुश्क हो गए। मैंने अपने वालिद हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) से कहा कि आप नबी (सल्ल.) को जवाब दें। उन्होंने कहा, ''बेटी! मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता कि क्या कहूँ।'' फिर मैने अपनी माँ से कहा कि, ''आप ही कुछ कहें।'' माँ ने

कहा,'' बेटी ! मैं हैरान हूँ, क्या कहूँ।'' इस पर हज़रत आइशा (रज़ि.) बोलीं, ''आप लोगों के कानों में एक बात पड़ गई है और दिलों में बैठ चुकी है। अब अगर मैं कहूँ कि मैं बेगुनाह हूँ और अल्लाह गवाह है कि मैं बेगुनाह हूँ, तो आप लोग न मानेंगे और ख़ामख़ाह ऐसी बात को मान लूँ जो मैने नहीं की और अल्लाह जानता है कि मैंने नहीं की। तो आप लोग मान लेंगे।'' मैंने उस वक़्त हज़रत याक़ूब (अलै.) का नाम याद करने की कोशिश की मगर याद न आया। आख़िर मैंने कहा, ''इस हालत में मेरे लिए इसके सिवा और क्या चारा है कि वही बात कहूँ जो हज़रत यूसुफ़ (अलै.) के बाप ने कही थी कि ''फ़-सबरुन जमील'' (मैं बेहतर तरीक़े से सब्र करूँगी।)

यह कहकर मैं लेट गई और दूसरी तरफ़ करवट ले ली। मैं उस वक़्त अपने दिल में कह रही थी कि अल्लाह मेरी बेगुनाही को जानता है। वह ज़रूर सच्ची बात खोल देगा। हालाँकि यह बात तो थी कि मेरे हक़ में वह्य नाज़िल होगी जो क़ियामत तक पढ़ी जाएगी। मैं अपने को इस हैसियत से कमतर समझती थी कि अल्लाह ख़ुद मेरी तरफ़ से बोलेगा। मगर मेरा यह ख़्याल था कि नबी (सल्ल.) कोई ख़ाब देखेंगे जिसमें अल्लाह तआला मेरी तरफ़ से सफ़ाई पेश करेगा। इतने में अचानक नबी (सल्ल.) पर वह हालत तारी हो गई जो वह्य नाज़िल होते वक़्त हुआ करती थी। यहाँ तक कि तेज़ जाड़े में भी नबी (सल्ल.) के चेहरे से पसीने की बूंदें टपकने लगती थीं। हम सब ख़ामोश हो गए, मैं तो बिल्कुल बेख़ौफ़ थी मगर मेरे माँ-बाप का यह हाल था कि काटो तो खून नहीं बदन में, वे डरते थे कि देखिए अल्लाह तआला क्या सच्चाई खोलता है। जब वह हालत दूर हुई तो नबी (सल्ल.) बहुत ख़ुश थे। आप (सल्ल.) ने हँसते हुए, पहली बात जो कही वह यह थी कि, ''मुबारक हो आइशा ! अल्लाह ने तुम्हारी सफ़ाई नाज़िल कर दी, उसके बाद नबी (सल्ल.) ने दस आयतें सुनाईं (यानी सूरा नूर की आयत 11 से 21)। मेरी माँ ने कहा कि उठो और नबी (सल्ल.) का शुक्रिया अदा करो। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने कहा, ''मैं न नबी (सल्ल.) का शुक्रिया अदा करूँगी और न आप दोनों (माँ-बाप) का। बल्कि अल्लाह का शुक्र अदा करती हूँ, जिसने मेरी तरफ़ से सफ़ाई नाज़िल की। आप लोगों ने तो उस लाँछन का इंकार तक न किया।''

सूरा नूर की आयत 11 से 21 तक का तर्जुमा

''जो लोग यह तोहमत (लाँछन) गढ़ लाए हैं वे तुममें से ही एक टोली है। (यह इशारा मदीना के मुनाफ़िक़ों की तरफ़ है।) इस बात को अपने हक़ में बुरा न समझो; बल्कि वह तुम्हारे हक़ में अच्छा ही है। उनमें से इंसान के लिए वही है जो कुछ उसने गुनाह कमाया और उनमें से जिस इंसान ने इस (तोहमत) के बड़े हिस्से का ज़िम्मा अपने सिर लिया (यह इशारा है अब्दुल्लाह बिन उबइ की तरफ़) उसके लिए तो सबसे बड़ा अज़ाब है। जिस वक़्त तुम लोगों ने उसे सुना था उसी वक़्त क्यों न ईमानवाले मर्दों और ईमानवाली औरतों ने अपने आप से अच्छा गुमान करके कह दिया कि यह तो एक खुली हुई झूठी तोहमत है? वे लोग (अपने इल्ज़ाम के सुबूत में) चार गवाह क्यों नहीं लाए? तो जब वे गवाह नहीं लाए, तो अल्लाह की नज़र में वही झूठे हैं। और अगर तुम लोगों पर दुनिया और आख़िरत में अल्लाह का फ़ज़्ल और उसका रहम व करम न होता तो जिन बातों में तुम पड़ गए थे, उनके बदले में तुम्हें एक बड़ा अज़ाब आ लेता। (ज़रा सोचो उस वक़्त तुम कैसी ग़लती करते चले जा रहे थे) जब तुम्हारी एक ज़बान से दूसरी ज़बान इस झूठ को लेती चली जा रही थी और तुम अपने मुँह से वह कुछ कहे जा रहे थे जिसके बारे में तुम कुछ भी न जानते थे। तुम उसे एक छोटी बात समझ रहे थे, हालाँकि अल्लाह की नज़र में वह बहुत बड़ी बात थी। और जब तुमने उसे सुना था, क्यों न कह दिया कि हमें ऐसी बात ज़बान से निकालना शोभा नहीं देता। सुब्हानल्लाह; यह तो एक बहुत ही बड़ा लाँछन है। अल्लाह तुम्हें नसीहत करता है कि फिर कभी ऐसा काम न करना, यदि तुम ईमान वाले हो। अल्लाह तुमको साफ़-साफ़ हिदायत करता है और अल्लाह जाननेवाला और हिकमतवाला है।

जो लोग चाहते हैं कि ईमान लानेवालों में बेहयाई फैले, वे दुनिया और आख़िरत में दर्दनाक सज़ा के हक़दार हैं। अल्लाह जानता है और तुम नहीं जानते। अगर अल्लाह का फ़ज़्ल और उसका रहम व करम तुम पर न होता और यह बात न होती कि अल्लाह बहुत ही मेहरबानी करनेवाला और रहम करने वाला है·तो (यह चीज़ जो अभी तुम्हारे बीच फैलाई गई थी बहुत ही बुरे नतीजे दिखा देती)।

ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! शैतान के क़दमों पर न चलो। जो कोई शैतान के क़दमों पर चलेगा तो वह उसे बेहयाई और बुराई का हुक्म देगा। अगर अल्लाह का फ़ज़्ल और उसका रहम व करम तुम पर न होता तो तुम में से कोई एक भी पाक न होता। मगर अल्लाह ही जिसे चाहता है पाक कर देता है। और अल्लाह सुनने और जानने वाला है।''

सूरा नूर के तामीरी पहलू

अल्लाह तआला ने इन आयतों में कई बातें मुसलमानों की तरबियत के लिए कही हैं। (1) पहली बात तो यह कि मुनाफ़िक़ों की टोली खुलकर सामने आ गई। इससे पहले यह हाल था कि ये पहचाने नहीं जा सकते थे और अन्दर ही अन्दर घुन की तरह लगे हुए थे और मुस्लिम समाज को नुक़सान पहुँचाने की कोशिश किया करते थे। अब मुसलमान उनको जान गए और उनसे होशियार हो गए। (2) दूसरी बात अल्लाह तआला ने यह फ़रमाई कि ऐ मुसलमानो! तुम इस अफ़वाह को अपने लिए बुराई न समझो, बल्कि यह तुम्हारे लिए अच्छा हुआ। घबराओ नहीं, मुनाफ़िक़ों ने अपने ख़याल से बहुत बड़ी चाल चली थी लेकिन ये उन्हीं पर उलट गई। जब उन्होंने देखा कि मुसलमानों से जंग करके उनका कुछ बिगाड़ न सके, उलटे सारे अरब की हार हुई तो अब उन्होंने चाहा कि चाल-चलन के मैदान में मुसलमानों को हराएँ। लेकिन उनका यह वार उलटा उन्हीं पर पड़ा। इस मौक़े पर अगर नबी (सल्ल.) हुक्म दे देते तो उन मुनाफ़िक़ों की गरदनें उड़ा दी जातीं। मगर एक महीने से ज़्यादा नबी (सल्ल.) ने और मुसलमानों ने बड़े सब्र के साथ यह सब सुना और सहन किया और हज़रत आइशा (रज़ि.) के बारे में बुरा गुमान नहीं किया।

सौतनों का मामला कितना नाज़ुक होता है। सौतनें ऐसे मौक़े पर तो बहुत बातें फैलाती हैं। लेकिन उनमें से किसी ने भी हज़रत आइशा (रज़ि.) के ख़िलाफ़ एक लफ़्ज़ न कहा। सौतनों में हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) बिन्त जहश को सबसे ज़्यादा हज़रत आइशा (रज़ि.) से बराबरी का दावा था। उनका नबी (सल्ल.) से ख़ानदानी रिश्ता भी था। लेकिन जब नबी (सल्ल.) ने हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) से पूछा तो उन्होंने कानों पर हाथ रखा। ख़ुद हज़रत आइशा (रज़ि.) से सुनिए कि हज़रत ज़ैनब ने क्या कहा–

हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि पाक बीवियों में सबसे ज़्यादा ज़ैनब ही से मेरा मुक़ाबला रहता था मगर उस अफ़वाह के सिलसिले में जब नबी (सल्ल.) ने उनसे पूछा कि आइशा के बारे में तुम क्या जानती हो तो उन्होंने कहा– ऐ अल्लाह के रसूल! ख़ुदा की क़सम मैं आइशा (रज़ि.) में भलाई के सिवा कुछ नहीं जानती।

अख़्लाक़ी बुलन्दी की एक मिसाल और –

हज़रत अबू अय्यूब अंसारी (रज़ि.) से उन अफ़वाहों का ज़िक्र उनकी बीवी ने किया तो वे कहने लगे, "अय्यूब की माँ! अगर तुम आइशा की जगह उस मौक़े पर होतीं तो क्या ऐसा अमल करतीं?" वे बोलीं– "ख़ुदा की क़सम हरगिज़ नहीं !" यह सुनकर हज़रत अबू अय्यूब (रज़ि.) ने समझाया, "तो फिर आइशा तो तुम से कई दर्जा बुलन्द हैं और मैं कहता हूँ कि अगर सफ़वान की जगह मैं होता तो इस तरह का ख़याल तक न कर सकता था। सफ़वान तो मुझसे अच्छा मुसलमान है।" (हज़रत उसामा (रज़ि.) और बाँदी और दूसरे सहाबा (रज़ि.) की गवाही का बयान इससे पहले किया चुका है।)

सारे हालात की जाँच पड़ताल के बाद हज़रत सफ़वान (रज़ि.) ही के ग़ुस्से का पता मिलता है। किसी ने उनसे कहा कि हस्सान बिन साबित (रज़ि.) तुम्हारे बारे में फ़लाँ-फ़लाँ बात कहते हैं। तो क़सम खाकर सफ़वान (रज़ि.) ने कहा कि अब तक मैंने किसी औरत को छुआ भी नहीं है। उसके बाद ग़ुस्से में तलवार लेकर निकले और हस्सान पर वार किया।

वार गहरा नहीं पड़ा, लोग दौड़ पड़े। सफ़वान (रज़ि.) को पकड़ा, नबी (सल्ल.) के पास ले गए। नबी (सल्ल.) ने उनका क़ुसूर माफ़ कराया। बदले में जायदाद दी।

बाद में इन्हीं हज़रत हस्सान के बारे में लोगों ने हज़रत आइशा (रज़ि.) से कहा कि यह वह इंसान है जिसने मुसलमान होकर आप को बदनाम किया था (जबकि मुनाफ़िक़ न था)। तो हज़रत आइशा (रज़ि.) ने लोगों को जवाब दिया–

"लोगो ! यह वह इंसान है जो इस्लाम के दुश्मन शाइरों को नबी (सल्ल.) और मुसलमानों की तरफ़ से मुँहतोड़ जवाब दिया करता था। (और नबी (सल्ल.) उसकी शायरी से ख़ुश होते थे)। स्पष्ट रहे कि हज़रत हस्सान बिन साबित (रज़ि.) ने उस अफ़वाह में हिस्सा लिया था।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) हज़रत मिसतह (रज़ि.) का घरेलू ख़र्च उठाते थे। जब मिसतह (रज़ि.) ने अफ़वाहों में हिस्सा लिया तो अबू बक्र (रज़ि.) ने कहा कि, "ख़ुदा की क़सम ! अब उनका ख़र्च बन्द कर दूँगा। लेकिन अल्लाह ने हुक्म दिया–

> "तुम में से जो लोग खाते-पीते और ख़ुशहाल हैं। वे इस बात की क़सम न खा बैठें कि अपने रिश्तेदारों, मुहताजों और अल्लाह की राह में हिजरत करनेवालों को कुछ न देंगे। उन्हें माफ़ कर देना चाहिए और छोड़ देना चाहिए। क्या तुम नहीं चाहते कि अल्लाह तुमको माफ़ करे और अल्लाह की बड़ाई यह है कि वह बड़ा माफ़ करनेवाला है और रहम करने वाला है।" (क़ुरआन, 24:22)

यह आयत सुनते ही हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने कहा– "ख़ुदा की क़सम, ज़रूर-ज़रूर हम चाहते हैं कि "ऐ हमारे रब ! तू हमारी ग़लतियाँ माफ़ कर दे।"

उसके बाद फिर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) मिसतह (रज़ि.) को ख़र्च देने लगे और उन्हें माफ़ कर दिया। हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) कहते हैं कि हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) की तरह कुछ और सहाबा (रज़ि.) ने भी क़सम खाई थी कि वे अफ़वाहों में हिस्सा लेनेवाले रिश्तेदारों की मदद नहीं करेंगे। उन सब ने भी उन्हें माफ़ कर दिया और जो ख़र्चा देते थे वह देते रहे।

यह अल्लाह का कितना बड़ा एहसान और फ़ज़्ल व करम है कि उसने क़ुरआन मजीद की उसी सूरा नूर के ज़रिए, जो इस अफ़वाह पर नाज़िल हुई, मुसलमानों को समाजी इस्लाह (सुधार) के लिए बेहतरीन उसूल और फ़ौजदारी और मानहानि के बारे में बेदाग़ नियम और शहरी ज़िन्दगी को गन्दगी से बचाने के लिए लाजवाब क़ानून प्रदान किए।

क़ुरआन मजीद की सूरा नूर के क़ानून :

(1) ज़िना करनेवाली औरत और ज़िना करनेवाले मर्द, दोनों में से हर एक को सौ कोड़े मारो। (सूरा नूर आयत 2)

(2) बदकार मर्दों और औरतों से सामाजिक बायकाट का हुक्म दिया। सूरा नूर, आयत 3 का शाब्दिक अनुवाद इस प्रकार है–

"व्यभिचारी शादी न करे मगर व्यभिचारिणी और मुशरिका के साथ और व्यभिचारिणी शादी न करे लेकिन व्यभिचारी और मुशरिक के साथ और यह ईमानवालों पर हराम कर दिया है।"

(3) जो शख़्स दूसरे पर व्यभिचार का इलज़ाम लगाए और फिर चार गवाह न लाए उसको अस्सी कोड़े मारो और वह हमेशा के लिए अविश्वसनीय हो गया। फिर कभी भी उसकी गवाही सच्ची न मानी जाएगी। (आयत 4)

(4) शौहर अपनी बीवी पर लाँछन लगाए तो लिआन का क़ाइदा तय किया गया। लिआन की तफ़सील के लिए देखें, (आयत 6 से 10)

(5) अफ़वाहों में हिस्सा न लो। लाँछनों को दबाने की कोशिश करो। अफ़वाहें फैलानेवालों की हौसला अफ़ज़ाई न करो। उनकी बात न सुनो। आपस में अच्छा गुमान रखो जब तक गुनाह साबित न हो जाए। (आयत 17 से 20)

(6) ख़बीस (बुरी) औरतें खबीस मर्दों के लिए और ख़बीस मर्द ख़बीस औरतों के लिए थानी जोड़ा उन्हीं का आपस में ठीक है। इससे यह साबित होता है कि नबी (सल्ल.) पाक इंसान थे तो आइशा (रज़ि.) सच में इलज़ाम से पाक थीं वरना अल्लाह तआला उस जोड़े को क़ायम न रखता। (आयत 26)

(7) दूसरों के घरों में इजाज़त लेकर और मर्ज़ी पाकर जाया करो। (आयत 27)

(8) अगर किसी घर में कोई न हो तो उस घर में हरगिज़ न जाओ। (आयत 28)

(9) अगर तुम से कहा जाए कि वापस जाओ तो चुपके से वापस हो जाओ। (आयत 28)

(10) हाँ तुम होटलों, सराय, मेहमानख़ानों, मुसाफ़िरख़ानों आदि के अन्दर इजाज़त के बग़ैर जा सकते हो। (आयत 29)

(11) ऐ नबी! मोमिन मर्दों और औरतों से कह दो कि वे अपनी नज़र बचाकर रखें और अपनी शर्मगाहों की हिफ़ाज़त करें। (आयत 30, 31)

(12) औरतें अपना बनाव-शृंगार दिखाती न फिरें सिवाय उसके जो हिस्सा मजबूरन हवा से खुल जाए। और अपने सीनों पर अपनी ओढ़नियों के आँचल डाले रहें। (आयत 30-31)

(13) कोशिश करो कि समाज में कोई मर्द बिन-ब्याहा न रहे और न कोई औरत बिन-ब्याही। (आयत 32)

(14) बाँदियों से पेशा कराना हराम बताया गया। (आयत 33)

नोटः- इसके अलावा जो क़ाइदे या क़ानून इस सूरा में हैं वे छोड़ दिए हैं, क्योंकि वे इस अफ़वाह के अलावा हैं। इस अफ़वाह से सम्बन्धित जो-जो ग़लत राहें हो सकती थीं वे सब अल्लाह तआला ने बन्द कर दीं और ये सब हमें मिला हज़रत आइशा (रज़ि.) की वजह से। अल्लाह की रहमत हो हज़रत आइशा (रज़ि.) पर। अल्लाहु अकबर! कितना संगीन इलज़ाम और कितने सब्र व धैर्य के साथ बर्दाश्त किया। तमाम सहाबा (रज़ि.) इस बात को स्वीकार करते हैं कि ये क़ानूनी बरकतें सिद्दीक़ ख़ानदान की बदौलत ही हासिल हुईं।

तयम्मुम का मसला

तयम्मुम यानी पानी न मिलने पर पाक मिट्टी पर हाथ मार कर चेहरे और हाथों पर कोहनियों तक मल लेना। यह वुज़ू का क़ायम मुक़ाम (विकल्प) है। तमाम सहाबा (रज़ि.) इस बात पर एक राय हैं कि तयम्मुम का मसला भी हज़रत

आइशा (रज़ि.) की वजह से अल्लाह तआला ने हमें प्रदान किया। उसका क़िस्सा इस तरह है :–

"एक बार नबी (सल्ल.) सफ़र में थे। उस सफ़र में भी हज़रत आइशा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के साथ थीं। वही हार गले में था। क़ाफ़िले ने एक जगह पड़ाव किया। यहाँ भी हार खो गया। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने फ़ौरन नबी (सल्ल.) को ख़बर दी। हार ढूंढा जाने लगा, मगर वह कहीं न मिला। एक और मुश्किल यह थी कि क़ाफ़िला जहाँ पड़ाव डाले हुए था वहाँ पानी न था। लोग घबराकर हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के पास आए कि आपकी बेटी ने किस मुसीबत में फँसा दिया। अबू बक्र (रज़ि.) भी झुंझलाए हुए थे, सीधे आइशा (रज़ि.) के पास पहुँचे। वहाँ उस समय नबी (सल्ल.) सो रहे थे। बाप ने बेटी को डाँटा, "आए दिन तुम एक न एक मुसीबत लाती हो।" यह कहकर कचोके दिए, मगर हज़रत आइशा (रज़ि.) इस ख़याल से कि नबी (सल्ल.) न जागें, कुछ न बोलीं, और कचोके सहती रहीं।

नबी (सल्ल.) सुबह को जागे। आप (सल्ल.) को बताया गया कि पानी नहीं है, नमाज़ का वक़्त है, अब क्या करें। नबी (सल्ल.) भी परेशान हो गए कि क्या करें। अब अल्लाह तआला ने मेहरबानी करके यह हुक्म दिया–

> "अगर तुम बीमार हो या सफ़र में हो या ज़रूरी हाजत से फ़ारिग़ हुए हो या बीवियों के पास गए हो और तुम पानी नहीं पाते तो पाक मिट्टी की तरफ़ जाओ और उससे कुछ मुँह और हाथ पर फेर लो। अल्लाह माफ़ करनेवाला और बख़्शनेवाला है।" (क़ुरआन, 5:6)

इस्लाम के लिए जी जान लड़ा देनेवाले पूरे क़ाफिले के लोग इस मुसीबत से परेशान व तिलमिला रहे थे, यह आयत सुनकर वे लोग ख़ुशी के मारे उछल पड़े। मुसलमान अपनी माँ, हज़रत आइशा (रज़ि.) को दुआएँ देने लगे। अंसार के सरदार हज़रत उसैद बिन हुज़ैर (रज़ि.) ख़ुशी से फूले न समाए, पुकार उठे – "ऐ अबू बक्र सिद्दीक़ के घर वालो! इस्लाम में यह तुम्हारी पहली बरकत नहीं है।" (यानी इस तरह की बरकतें और भी तुम्हारी वजह से मिली हैं।)

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) जो अभी-अभी आइशा (रज़ि.) को डाँटकर और कचोके देकर आए थे, दौड़े-दौड़े बेटी के पास पहुँचे और बड़े प्यार से कहा– "प्यारी बेटी! मुझे मालूम न था कि तू इस क़द्र मुबारक है। तेरी वजह से मुसलमानों को कितनी आसानी मिली।"

अब सुनिए दिलचस्प बात, हार नहीं मिला तो क़ाफ़िले को चलने का हुक्म दिया गया। हज़रत आइशा (रज़ि.) का ऊँट उठा तो हार उसके नीचे था। अल्लाह को मंज़ूर था कि इस सफ़र में तयम्मुम का तरीक़ा बताए। अत: हार इस तरह गुम हुआ और मिला। सब तारीफ़ अल्लाह के लिए है। असूल में अल्लाह तआला को हज़रत आइशा (रज़ि.) का मान-सम्मान बढ़ाना था।

बीवियों को चुनाव का अधिकार देनेवाली आयत

"ऐ नबी! अपनी बीवियों से कहो, अगर तुम दुनिया और उसकी ज़ीनत (शोभा) चाहती हो, तो आओ मैं तुमको कुछ दे-दिलाकर भले तरीक़े से रुख़सत कर दूँ और अगर तुम अल्लाह और उसके रसूल और आख़िरत का घर चाहनेवाली हो तो बेशक अल्लाह ने तुममें से नेक औरतों के लिए बड़ा अच्छा बदला (अज्र) तैयार कर रखा है।" (क़ुरआन, 33 : 28-29)

अगर कोई शौहर अपनी बीवी को यह अधिकार देदे कि वह (बीवी) चाहे तो उसके (यानी शौहर के) साथ रहे या उससे अलग हो जाए, तो बीवी का उन दोनों बातों में से एक बात का फ़ैसला करना तख़ईर कहलाता है। यह आयत उस मौक़े पर नाज़िल हुई थी जबकि अरब के सारे ग़ैर-मुस्लिम लोग (मक्के के क़ुरैशी सरदार मदीने के आस-पास के यहूदी और अरब के दूसरे क़बीले) मिल-जुल कर अरब की छोटी-सी बस्ती पर हमला करनेवाले थे। वह मदीना जहाँ नबी (सल्ल.) मक्का से हिजरत कर के आए थे और इस्लामी हुकूमत बना ली थी। अरब के सारे ही बड़े-बड़े सरदारों को यह ख़तरा हो गया था कि अगर यह इस्लामी हुकूमत क़ायम रही तो उनके लिए या तो तबाही है या वे इस्लामी हुकूमत के अधीन होकर रहेंगे। चुनाँचे सब मिल-जुल कर एक निर्णायक लड़ाई नबी (सल्ल.) से लड़ना चाहते थे। निर्णायक बात यह कि अरब में हम रहें या इस्लाम के ध्वजावाहक।

नबी (सल्ल.) की हालत

उस वक़्त नबी (सल्ल.) के पास माल यानी धन-दौलत की बहुत कमी थी। जब नबी (सल्ल.) मदीना आए थे तो चार साल तक आमदनी का कोई ज़रिया न था। फिर एक अभियान में एक ज़मीन का टुकड़ा नबी (सल्ल.) को

मिला लेकिन यह इतना कम था कि नबी (सल्ल.) की बीवियों के कम से कम ख़र्च के लिए भी काफ़ी न था। उस वक्त नबी (सल्ल.) की चार बीवियाँ थीं। हज़रत सौदा (रज़ि.), हज़रत आइशा (रज़ि.), हज़रत हफ़्सा (रज़ि.) और हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि.)। ये चारों बीवियाँ अरब के रईसों की बेटियाँ थीं। नबी (सल्ल.) अपनी बीवियों से बेहद मुहब्बत करते थे। इस प्यार, मुहब्बत और नर्मी के बावजूद नबी (सल्ल.) चाहते थे कि ये दुनिया की औरतों के लिए बेहतरीन नमूना बनें और उस नमूने से यह ज़ाहिर हो कि ये दुनिया के मुक़ाबले में आख़िरत को पसन्द करनेवाली हैं। फिर यह कि उस वक़्त नबी (सल्ल.) पर चारों तरफ़ से दबाव और बोझ पड़ गया था। एक तरफ़ सारे अरब के मिले-जुले लश्करों की चढ़ाई का ख़तरा, उनसे लड़ने के उपाय सोचना और इन्तिज़ाम करना। ख़ुद मुसलमान बहुत ग़रीब हो रहे थे। उनके लिए कुछ करना और अगर कुछ भी न कर सकें तो कम से कम उन्हें तसल्ली देना। ख़ुद भी उसी तरह रहना जिस तरह सारे मुसलमान रह रहे हैं। ऐसी हालत में जो भी प्राप्त हो वह सब अपने और अपने घरों के लिए रख लेना, यह अल्लाह के रसूल (सल्ल.) की शान के ख़िलाफ़ था। चुनाँचे ऐसे ही एक मौक़े पर जब अरब के उन मिले-जुले लश्करों को रोकने के लिए नबी (सल्ल.) मदीना के आस-पास ख़ंदक़ (खाई) खोद रहे थे तो आप (सल्ल.) भी मेहनत में शामिल थे। काम के दौरान कुछ मुसलमान भूख के मारे निढाल हो रहे थे। उनके ईमान और यक़ीन का यह आलम था कि वे ख़न्दक़ खोद रहे थे और पेट से पत्थर बांधे हुए थे।

इसी बीच एक मुसलमान बेहद निढाल हो गया। उसने कहा- "ऐ अल्लाह के रसूल!" उसके बाद कुछ न कह सका, उसने कुर्ता उठा दिया। मंशा यह था कि भूख के मारे पेट से पत्थर बांधे हुए था। नबी (सल्ल.) ने जवाब में कुछ न कहा। ख़ुद अपना कुर्ता उठा दिया। मुसलमानों ने देखा कि अल्लाह का नबी (सल्ल.), मुसलमानों की फ़ौज का नेता ख़ुद पेट से दो पत्थर बांधे हुए है।

मदीना के मुनाफ़िक़ (कपटाचारी)

नबी (सल्ल.) ऐसी परेशानी की हालत में थे। ऐसी हालत में मदीना के मुनाफ़िक़ों (कपटचारियों) ने नबी (सल्ल.) के घर को निशाना बनाया। मुनाफ़िक़ अपनी औरतों को इसलिए नबी (सल्ल.) के घरों में भेजने लगे कि वे

उनमें ख़ूब बिगाड़ फैलाएँ। ये मुनाफ़िक़ औरतें नबी (सल्ल.) की बीवियों के पास आतीं और इस तरह हमदर्दी जतातीं-''हाय-हाय, कैसी-कैसी रईसों की बेटियाँ, अरब के सरदारों की बेटियाँ, ये तो फूलों की सेजों के लायक़ थीं। मगर अफ़सोस कि इन्हें तन को कपड़ा और पेट को निवाला भी ठीक से नहीं मिलता।''

सौ फूंको से गीला भी सुलग उठता है। बहरहाल पाक बीवियाँ (रज़ि.) थीं तो इंसान ही। हालात का असर उनपर भी पड़ सकता था। मुनाफ़िक़ लोगों का मक़सद तो यह था कि वे जिस तरह नबी (सल्ल.) को बाहर परेशान करते हैं, उसी तरह नबी (सल्ल.) घर के अन्दर परेशान हो जाएँ, तो मुसलमानों का बना-बनाया खेल बिगड़ सकता है। इस मक़सद के लिए मुनाफ़िक़ औरतें जो भूमिका अदा कर रही थीं वह सूरते हाल का ठीक जायज़ा था। हज़रत सौदा (रज़ि.) अनुभवी और बूढ़ी थीं, उनपर क्या असर होता। हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि.) भी बहुत संजीदा और खुद्दार औरत थीं, वे भी असर न लेती थीं। लेकिन हज़रत हफ़्सा (रज़ि.), जो ज़रा मिज़ाज की तेज़ थीं और हज़रत आइशा (रज़ि.) तो उम्र में सब पाक बीवियों से छोटी थीं ही। चूँकि नबी (सल्ल.) सबसे ज़्यादा उनकी ही तरबियत पर ध्यान देते थे इसलिए नवयुवती व अनुभवहीन और भोली-भाली बीवी पर मुनाफ़िक़ औरतें सबसे ज़्यादा 'मेहरबान' थीं।

हज़रत आइशा (रज़ि.) थीं तो उम्र में कम लेकिन बात को पेश करने का जो ढँग उनकी तक़रीर में होता था, उसने हज़रत आइशा (रज़ि.) को नबी (सल्ल.) की बीवियों में लीडरशिप का मक़ाम दे दिया था। आख़िर एक दिन सबने नबी (सल्ल.) से तक़ाज़ा कर ही दिया कि कम से कम बुनियादी ज़रूरतों के लिए कुछ न कुछ मिलना ही चाहिए। यह माँग पेश करने में हज़रत आइशा (रज़ि.) आगे-आगे थीं। नबी (सल्ल.) की ज़िम्मेदारियाँ घर और बाहर दोनों तरह की थीं। ये दोहरी ज़िम्मेदारियाँ नबी (सल्ल.) के जिस्म के ख़ून, नबी (सल्ल.) के दिल व दिमाग़ की ताक़त और आप (सल्ल.) के वक़्त के एक-एक लम्हे को निचोड़े डाल रही थीं। नबी (सल्ल.) अपने घर के ख़र्च के लिए भी फ़िक्र और कोशिश नहीं कर सकते थे। उन्हीं दिनों की एक घटना सुनिए–

हदीसों की किताब सहीह मुस्लिम में है। इस हदीस को हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह (रज़ि.) ने बयान किया है कि– "एक दिन हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) और हज़रत उमर (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के पास आए और देखा कि नबी (सल्ल.) की बीवियाँ नबी (सल्ल.) के आस-पास बैठी हैं और नबी (सल्ल.) ख़ामोश हैं। नबी (सल्ल.) ने हज़रत उमर (रज़ि.) से कहा: ये मेरे आस-पास बैठी हैं जैसा तुम देख रहे हो, ये मुझ से ख़र्च के लिए रूपया माँग रही हैं। इस पर दोनों ने अपनी-अपनी बेटियों को डाँटा (यानी अबू बक्र (रज़ि.) ने आइशा (रज़ि.) को और उमर (रज़ि.) ने हफ़्सा (रज़ि.) को और उनसे कहा तुम नबी (सल्ल.) को परेशान करती हो और वह चीज़ माँगती हो जो नबी (सल्ल.) के पास नहीं है।"

इस हदीस से मालूम होता है कि नबी (सल्ल.) उस वक़्त कितने ज़्यादा तंगदस्त थे और कुफ़्र और इस्लाम की सख़्त कशमकश के ज़माने में ख़र्च के लिए पाक बीवियों की माँगें, नबी (सल्ल.) के मिज़ाज पर क्या असर डाल रही थीं।

अल्लाह की मदद

अल्लाह तआला चाहता था कि नबी (सल्ल.) की बीवियाँ दुनिया की आज़माइशों में पड़कर साफ़ और बेदाग़ निकलें और दुनिया की औरतों के लिए नमूना बनें। अल्लाह तआला हज़रत आइशा (रज़ि.) को औरतों के लिए कामिल नमूना बनाना चाहता था। इसलिए अल्लाह तआला ने आज़माइश के लिए दुनिया के सामने हज़रत आइशा (रज़ि.) को पेश किया। चुनाँचे उपरोक्त आयत नाज़िल की जिसमें बीवियों को चुनाव का अधिकार दिया गया।

जब यह आयत नाज़िल हुई तो नबी (सल्ल.) सबसे पहले हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास गए और फ़रमाया, "मैं तुमसे एक बात कहता हूँ, जवाब देने में जल्दी न करना। अपने माँ-बाप की राय ले लेना फिर फ़ैसला करना।" फिर नबी (सल्ल.) ने उनसे कहा कि अल्लाह तआला की तरफ़ से यह आयत नाज़िल हुई है और आप (सल्ल.) ने आयत सुनाई।

नबी (सल्ल.) ने जो यह बात कही कि अपने माँ-बाप से राय ले लेना, तो

शायद मंशा यह होगा कि चूँकि हज़रत आइशा (रज़ि.) अभी नवयुवती हैं और अनुभवहीन हैं इसलिए माँ-बाप के मश्विरे के बाद जवाब दें। लेकिन अब बात शौहर की नहीं रही बल्कि अब अल्लाह की बात अल्लाह का नबी (सल्ल.) बोल रहा था। असल में बीवियों की माँग तो शौहर से थी। अल्लाह और अल्लाह के नबी (सल्ल.) से नहीं थी। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने आयत सुनी तो कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! इस मामले में (यानी अल्लाह के हुक्म को सुनकर) मैं माँ-बाप से पूछूँ? मैं तो अल्लाह! अल्लाह के रसूल (सल्ल.) और आख़िरत को चाहती हूँ।"

हज़रत आइशा (रज़ि.) आज़माइश की भट्टी में तपकर कुन्दन बनकर निकलीं। नबी (सल्ल.) ने हज़रत आइशा (रज़ि.) का जवाब दूसरी बीवियों को नहीं बताया। लेकिन जब आयत सुनाई तो उन सबने भी यही जवाब दिया जो हज़रत आइशा (रज़ि.) ने दिया था। मुनाफ़िक़ों का दाँव ख़ाली गया और नबी (सल्ल.) घर की तरफ़ से मुत्मइन हो गए। इस इत्मीनान की हालत और इसकी क़द्र उस इंसान से पूछिए जो इस्लाम का आवाहक बनकर दुनिया के सामने आए, उसपर चारों तरफ़ से ताने कसे जाएँ, वह सताया जाए, वह परेशान हो। लेकिन जब घर आए तो उसकी बीवी मुस्कराकर उसका स्वागत करे, उसका ग़म दूर कर दे और शौहर घर में इत्मीनान की साँस ले।

नबी (सल्ल.) को अल्लाह की मदद मिली और फिर घर की तरफ़ से इत्मीनान हुआ तो नबी (सल्ल.) ने अरब के संयुक्त मोर्चे का (ख़ंदक़ की लड़ाई) इस ख़ूबी से मुक़ाबला किया कि बे-सरो सामान होते हुए भी उनकी धज्जियाँ उड़ा दीं। संयुक्त मार्चे के लोगों ने बड़े ज़ोर की चढ़ाई की लेकिन सब नाकाम और नामुराद वापस हुए।

ऐसी आज़माइश में हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जो किरदार अदा किया और अल्लाह के हुक्म को सुनकर जो जवाब दिया, क्या वह आज की औरतों के लिए बेहतर नमूना नहीं है? ख़ास तौर से उन औरतों के लिए जिनके शौहर इस्लाम को आगे बढ़ाने के लिए जान खपा रहे हैं। हमारी बहनें और माएँ सोचें।

शहद का क़िस्सा

मुहब्बत की हदें

इंसानी समाज में नबी का मक़ाम बेहद नाज़ुक मक़ाम है। एक मामूली सी बात भी जो किसी दूसरे इंसान की ज़िन्दगी में हो जाए तो उसकी ज़्यादा अहमियत नहीं होती लेकिन नबी चूँकि अल्लाह का नुमाइन्दा (प्रतिनिधि) होता है, अल्लाह के हुक्म लागू करता है और अपनी अमली ज़िन्दगी में अल्लाह के हुक्मों के मुताबिक़ नमूने पेश करके बताता है कि अल्लाह के हुक्मों पर इस तरह अमल करना चाहिए, इसलिए वही मामूली बात अगर नबी की ज़िन्दगी में पेश आ जाए तो लोग उसकी पैरवी करने लगते हैं और वह कानून बन जाता है। यही वजह है कि सहाबा किराम (रज़ि.) जब कोई नफ़्ल इबादत करते थे तो साफ़ बता देते थे कि यह फ़र्ज़ नहीं है। चूँकि नबी (सल्ल.) ने ऐसा किया है इसलिए मैं करता हूँ। मिसाल के तौर पर हजरे अस्वद के चूमने का मामला। नबी (सल्ल.) ने एक बार उसे चूम लिया था। तो हज़रत उमर (रज़ि.) ने भी एक बार चूमा, लेकिन बुलन्द आवाज़ से कहा, "ऐ हजरे अस्वद! तू पत्थरों की तरह एक पत्थर है (यानी तुझे चूमना फ़र्ज़ नहीं है और न तू इबादत के लायक़ है)। लेकिन चूँकि अल्लाह के नबी (सल्ल.) ने एक बार तुझे चूमा था इसलिए मैं भी चूमता हूँ।"

इस तरह की बहुत-सी मिसालें हैं कि सहाबा किराम (रज़ि.) ऐसी बातों को खोल दिया करते थे। अब एक क़ानूनी बात लीजिए। हराम व हलाल और जायज़ व नाजायज़ की हदें तय करने का हक़ अल्लाह का है। यह हक़ नबी को कभी नहीं कि अल्लाह की हराम की हुई बातों को नबी हलाल करदे या अल्लाह की हलाल की हुई बातों को हराम कर दे।

यह बात समझने के बाद अब सुनिए। यह तो सबको पता है कि नबी (सल्ल.) को अपनी बीवियों से बहुत मुहब्बत थी। आप अल्लाह की बताई हुई हदों के अन्दर बीवियों को ख़ुश करने के लिए वे सारे कम करते थे जो कर सकते थे। एक बार नबी (सल्ल.) बीवियों की ख़ुशी के लिए ज़रा नर्म पड़ गए। बात ज़्यादा अहम न थी मगर उसपर भी अल्लाह ने टोक दिया।

हुआ यह कि जब अल्लाह तआला ने मुँह बोला बेटा (लेपालक) बनाने की रस्म को तोड़ा तो ज़ैद बिन हारिसा (रज़ि.), जिनको नबी (सल्ल.) ने उनके बचपन में बेटा बना लिया था, अल्लाह के हुक्म के मुताबिक़ सगे बेटे की तरह नहीं रहे थे। फिर हज़रत ज़ैद ने अपनी बीवी हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) को तलाक़ दे दी। हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) नबी (सल्ल.) की फूफी की बेटी थीं। अल्लाह तआला ने नबी (सल्ल.) को हुक्म दिया कि उनसे शादी कर लो। नबी (सल्ल.) ने हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) से शादी कर ली। उसके बाद हज़रत आइशा (रज़ि.) की रिवायत हमारे लफ़्ज़ों में सुनिए:-

नबी (सल्ल.) का नियम था कि रोज़ाना पाक बीवियों के पास अस्र के वक़्त जाया करते थे। थोड़ी-थोड़ी देर सबके पास बैठते थे। एक दिन नबी (सल्ल.) हज़रत ज़ैनब के पास ज़्यादा देर बैठे। बात यह थी कि ज़ैनब (रज़ि.) के पास कहीं से शहद आया था। नबी (सल्ल.) को शहद बहुत पसन्द था। हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) ने शहद पेश किया। नबी (सल्ल.) ने शहद खाया। पहले दिन तो दूसरी बीवियों ने कुछ ग़ौर नहीं किया। लेकिन फिर दूसरे और तीसरे दिन भी ऐसा ही हुआ तो रश्क पैदा हुआ। ख़ास तौर पर ख़ुद हज़रत आइशा (रज़ि.) को सबसे ज़्यादा यह बात खटकी। उन्होंने यह बात दूसरी बीवियों के सामने रखी। फिर आपस में यह तय हुआ कि चूँकि नबी (सल्ल.) पाकीज़ा मिज़ाज हैं इसलिए जब नबी (सल्ल.) ज़ैनब (रज़ि.) के यहाँ से आएँ तो नबी (सल्ल.) से मुलाक़ात होने पर हम कहें कि आपके मुँह से मग़ाफ़ीर की बू आती है।

मग़ाफ़ीर अरब में एक तरह का फूल होता है जिसमें कुछ दुर्गन्ध सी होती है। अगर शहद की मक्खी उससे शहद बनाए तो उस शहद में भी उस दुर्गन्ध का असर आ जाता है। उन बीवियों का मंशा यह था कि इस तरह थोड़ा मनोरंजन होगा और इस सूक्ष्म मज़ाक़ से नबी (सल्ल.) सोचेंगे कि ज़ैनब (रज़ि.) के यहाँ का शहद शायद मग़ाफ़ीर का है और आप (सल्ल.) को उस शहद की ख़ाहिश न रहेगी और फिर आप (सल्ल.) हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) के यहाँ ज़्यादा देर नहीं बैठेंगे। उन बीवियों का यह सूक्ष्म मज़ाक़ काम कर गया। नबी (सल्ल.) के सामने जब उन बीवियों ने वही बात कही जो तय हुई थी तो नबी (सल्ल.) ने इरादा कर लिया कि अब यह शहद इस्तेमाल नहीं करेंगे। हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि नबी (सल्ल.) ने क़सम भी खा ली थी।

एक जायज़ चीज़ को इस्तेमाल न करने की अगर नबी क़सम खा ले तो यह बहुत बड़ी बात हो सकती है और वह उम्मत के लिए क़ानून बन सकती है। इसलिए अल्लाह ने फ़ौरन टोका, हुक्म आया कि:-

> "ऐ नबी! तुम क्यों उस चीज़ को (अपने ऊपर) हराम करते हो जो अल्लाह ने तुम्हारे लिए हलाल की है (यानी शहद)। क्या तुम अपनी बीवियों की ख़ुशी चाहते हो? अल्लाह माफ़ करनेवाला है और रहम करनेवाला है। अल्लाह ने तुम्हारे लिए अपनी क़समों से निकलने का तरीक़ा तय कर दिया है। अल्लाह तुम्हारा मालिक है। और वही जाननेवाला और हिकमतवाला है।" (क़ुरआन, 66:1-2)

यानी बीवियों की ख़ुशी के लिए एक हलाल चीज़ को अपने ऊपर हराम कर लेने की जो बात आप (सल्ल.) से हो गई है, हालाँकि यह कोई बड़ी बात नहीं है लेकिन एक नबी के लिए मुनासिब नहीं है। फ़ौरन क़सम तोड़ो, कफ़्फ़ारा अदा करो और शहद इस्तेमाल करो।

हुक्म पाकर नबी (सल्ल.) फिर से शहद खाने लगे। अल्लाह के उस हुक्म और हज़रत आइशा (रज़ि.) के उस मज़ाक़ से हमेशा के लिए अल्लाह तआला ने वह दरवाज़ा बन्द कर दिया, जिस से उम्मत (मुस्लिम समुदाय) में फ़साद या फ़ितना उठने की सम्भावना थी। इससे यह बात भी स्पष्ट हो गई कि बीवी से कितनी ही मुहब्बत हो लेकिन उसके लिए अल्लाह के हुक्म बदले नहीं जा सकते। यह बात उम्मत को किस क़िस्से से मिली। शहद के क़िस्से से और हज़रत आइशा (रज़ि.) के एक रश्क से।

इस्लामी आलिमों ने इस क़िस्से से क़सम खाने, किस चीज़ पर किस तरह की क़सम खाने, अहद करने और अहद की क़िस्मों पर तरह-तरह के क़ानून निकाले हैं।

नबी (सल्ल.) का एक राज़

उस राज़ का हाल हमें न मालूम होता अगर अल्लाह तआला क़ुरआन में बयान न करता। यह राज़ क़ुरआन की 66 वीं सूरा (तहरीम) की तीसरी, चौथी और पाँचवीं आयत में बयान हुआ है जो इस तरह है:-

"(और यह बात भी याद रखने की है) कि नबी (सल्ल.) ने एक बात अपनी एक बीवी से राज़ में कही थी फिर जब उस बीवी ने दूसरी बीवी पर वह राज़ खोल दिया और अल्लाह ने नबी को बता दिया (कि राज़ ज़ाहिर कर दिया गया), तो नबी ने उसको किसी हद तक (राज़ जाननेवाली बीवी को) ख़बरदार किया और कुछ अनदेखा कर दिया। फिर जब नबी (सल्ल.) ने उस बीवी को बताया (कि राज़ खोल दिया)। तो बीवी ने पूछा कि आपको उसकी ख़बर किसने दी ? नबी (सल्ल.) ने कहा, मुझे उसने ख़बर दी जो सबकुछ जानता है और वह बहुत ही जाननेवाला है।" (क़ुरआन, 66:3)

इस आयत से यह मालूम होता है कि कोई राज़ की बात नबी (सल्ल.) ने किसी एक बीवी से कही और उन्होंने दूसरी बीवी को वही बात बता दी। लेकिन अभी अल्लाह की तरफ़ से हुक्म ख़त्म नहीं हुआ। आगे अल्लाह तआला कहता है कि:–

"अगर तुम दोनों अल्लाह से तौबा करती हो (तो तुम्हारे लिए अच्छा है)। क्योंकि तुम्हारे दिल (तौबा करने की तरफ़) झुक ही चुके हैं और अगर नबी के मुक़ाबले में तुमने आपस में गुटबन्दी की तो जान लो कि अल्लाह उसका मालिक है और उसके बाद जिबरील और सभी नेक मुसलमान और सारे फ़रिश्ते उस के साथ और मददगार हैं।" (क़ुरआन 66:4)

इतना ही नहीं अल्लाह तआला उस राज़ को दूसरी बीवी तक पहुँचाने के सिलसिले में इससे ज़्यादा सख़्त चेतावनी देता है। इसी सूरा 66 (तहरीम) की पाँचवीं आयत देखिए-

"दूर नहीं कि अगर नबी तुम सब बीवियों को तलाक़ दे दे, तो अल्लाह उसे ऐसी बीवियाँ तुम्हारे बदले में दे दे जो तुम से बेहतर हों। सच्ची मुसलमान, ईमानवाली, फ़रमाँबरदार, तौबा करनेवाली, इबादत करनेवाली और रोज़ेदार। चाहे वे शौहर कर चुकी हों या कुँवारियाँ हों।"

अल्लाह की इस चेतावनी का यह असर हुआ कि दोनों बीवियाँ राज़ को पी गईं। अल्लाह की हिकमत देखिए, चेतावनी देने में ज़रा भी देर नहीं की, फ़ौरन अपने नबी को बता दिया और सूरा तहरीम नाज़िल कर दी। राज़ दोनों बीवियों के दिलों में दफ़्न होकर रह गया और इस तरह दफ़्न हुआ कि आज तक किसी को यह पता नहीं चला कि वह राज़ था क्या ?

अगर उस वक़्त के हालात जान लिए जाएँ, जब सूरा तहरीम नाज़िल हुई, तो उस राज़ की अहमियत का अन्दाज़ा हो सकता है। यह सूरा 8 हिजरी में नाज़िल हुई थी। उस वक़्त मदीना के मुनाफ़िक़ और आस-पास के यहूदियों ने इस्लाम की दुश्मनी में कोई ऐसी चाल न थी जो न चली हो। उन्होंने नबी (सल्ल.) को धोखा देकर मार डालने की कोशिश की। उन्होंने नबी (सल्ल.) को ज़हर पिलाया। उन्होंने नबी (सल्ल.) पर जादू कराया। नबी (सल्ल.) की सबसे ज़्यादा चहेती बीवी पर इलज़ाम लगाया और नबी (सल्ल.) को हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) और हज़रत उमर (रज़ि.) से लड़ाने की चाल चली। मुनाफ़िक़ों ने आए दिन बुरे इरादे किए। दुश्मनों से मिल-जुल कर उन्हें मुसलमानों पर लड़ने के लिए चढ़ा लाए। कौन-सा फ़रेब या धोखा था जो मुनाफ़िक़ों ने नहीं किया। नबी (सल्ल.) भी ऐसे नालायक़ों से मदीना को पाक कर देना चाहते थे।

ऐसी हालत में नबी (सल्ल.) ने कोई ऐसी बात अपनी किसी बीवी से कही जो अगर दुश्मन तक पहुँच जाती तो इस्लामी आंदोलन और मुसलमानों को सख़्त नुक़सान पहुँच जाता और हो सकता था कि भेद पाकर दुश्मन ऐसा हमला कर बैठते जिसका रोकना मुसलमानों के लिए बस से बाहर हो जाता और फिर अल्लाह को जिबरील (अलै.) की मदद भेजनी पड़ती और जब यह मालूम होता कि उस राज़ के ख़ुलने से यह सब कुछ हुआ तो नौबत यहाँ तक पहुँचती कि नबी (सल्ल.) अपनी बीवियों को तलाक़ दे देते।

वह तो अल्लाह का फ़ज़्ल हुआ। दोनों बीवियों और उनके साथ दूसरी सभी बीवियों को चेतावनी दे दी गई कि ख़बरदार अब कभी नबी के राज़ को मत खोलना क्योंकि घर में हर तरह की बातें हो सकती हैं। उन बातों में घरेलू आम बातें भी शामिल होती हैं और वे राज़ की बातें भी जिनका राज़ रखना ही अच्छा होता है।

उसी मौक़े पर जबकि एक बीवी ने दूसरी बीवी को राज़ की बात बता दी तो नबी (सल्ल.) को बहुत दुःख हुआ और आप (सल्ल.) ने इरादा कर लिया कि एक महीने तक किसी बीवी से मुलाक़ात न करेंगे। उन्हीं दिनों में नबी (सल्ल.) घोड़े से गिर पड़े। एक दरख़्त से टकरा जाने से बग़ल में चोट आ गई। हज़रत आइशा (रज़ि.) के कमरे से मिला हुआ एक बालाख़ाना था। नबी (सल्ल.) उस पर चले गए और वहीं ठहरे।

आयत नाज़िल हो चुकी थी। आयत का लफ़्ज़-लफ़्ज़ मुसलमानों की ज़बान पर था। मुनाफ़िक़ों की शरारत देखिए। उन्होंने मशहूर कर दिया कि नबी (सल्ल.) ने बीवियों को तलाक़ दे दी। यह मशहूर हुआ तो सहाबा किराम (रज़ि.) घबरा गए। सब मस्जिद में जमा हो गए। मुसलमानों के घरों में बेचैनी फैल गई। नबी (सल्ल.) की पाक बीवियों (रज़ि.) ने सुना तो अब उनको सिवाए रोने के और कोई काम न था। सहाबा में से किसी की हिम्मत नहीं हुई कि नबी (सल्ल.) के पास जाकर कुछ पूछें। हज़रत उमर (रज़ि.) नबी (सल्ल.) से कुछ खुले हुए थे। उन्होंने यह बुरी ख़बर सुनी तो कहा, "हफ़्सा तबाह हो गई!"

हज़रत उमर (रज़ि.) हिम्मत करके ऊपर गए। दो बार इजाज़त माँगी लेकिन इजाज़त न मिली। तीसरी बार इजाज़त मिली, हज़रत उमर (रज़ि.) अन्दर गए, तो देखा नबी (सल्ल.) ख़ाली चारपाई पर लेटे थे। जिस्म पर बानों के निशान पड़ गए थे। इधर-उधर नज़र डाली तो मिट्टी के कुछ बरतन और मशक सूखी पड़ी थी। आँखों में आँसू भर लाए, पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल ! क्या आपने बीवियों को तलाक़ दे दी?" नबी (सल्ल.) ने जवाब दिया, "नहीं।" हज़रत उमर (रज़ि.) ने पूछा, "तो फिर मैं यह ख़ुशख़बरी मुसलमानों को सुना दूँ।" नबी (सल्ल.) ने कहा, "सुना दो।" हज़रत उमर (रज़ि.) ने ख़ुशी में ज़ोर से 'अल्लाहु अकबर' का नारा लगाया और मुसलमानों में ख़ुशी की लहर दौड़ गई।

महीना 29 दिन का था। सब बीवियाँ एक-एक दिन गिन रही थीं। 29वें दिन नबी (सल्ल.) छत पर से उतर आए, तो सबसे पहले हज़रत आइशा (रज़ि.) के कमरे में गए। हज़रत आइशा (रज़ि.) के लिए यह मौक़ा और सौभाग्य ऐसा था कि ख़ुशी से मर जाने की सी हालत हो जाती तो भी कम थी। इस ख़याल से कि शायद कोई नई बात मालूम हो जाए, हज़रत आइशा (रज़ि.)

ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आज तो 29 ही तारीख़ है।" नबी (सल्ल.) ने जवाब दिया, "क्या महीना 29 का नहीं होता?"

नबी (सल्ल.) का एक माह तक बीवियों से अलग रहना एक घटना थी, जो हो गई। इस्लामी परिभाषा में इस घटना को 'ईला' कहते हैं। ईला के बारे में आलिमों ने बाद में बड़े-बड़े मसले निकाले। लेकिन वह राज़ क्या था, यह आज तक किसी को मालूम न हो सका। न किसी ने मालूम करने की कोशिश की और अगर कोशिश भी करते तो अल्लाह तआला की चेतावनी के बाद दोनों बीवियाँ क्यों बतातीं। चुनाँचे सहाबा (रज़ि.) उसकी खोज में न पड़े। लेकिन अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) जो क़ुरआन समझने में हज़रत उमर (रज़ि.) के शागिर्द थे और हज़रत आइशा (रज़ि.) से भी मसले मालूम करते थे, उन्हें यह खोज थी कि किसी तरह यह मालूम हो जाता कि वे दोनों बीवियाँ कौन थीं। चुनाँचे उन्होंने जिस तरह उसकी छानबीन की, उन्हीं की ज़बान से सुनिए, कहते हैं–

"मैं एक मुद्दत तक इस फ़िक्र में रहा कि हज़रत उमर (रज़ि.) से पूछूँ कि नबी (सल्ल.) की बीवियों में से वे कौन-सी दो बीवियाँ थीं जिन्होंने नबी (सल्ल.) के मुकाबले में गुटबन्दी की थी। जिनके बारे में अल्लाह तआला ने ऐसी सख़्त चेतावनी दी। लेकिन हज़रत उमर (रज़ि.) का रौब मुझ पर इतना था कि मेरी हिम्मत नहीं हुई कि पूछूँ। आख़िर एक बार हज़रत उमर (रज़ि.) हज के लिए गए। मैं भी साथ था। वापसी पर रास्ते में एक जगह उनको वुज़ू कराते हुए मौक़ा मिल गया और मैंने पूछ ही लिया। हज़रत उमर (रज़ि.) ने बताया कि वे दोनों हफ़्सा (रज़ि.) और आइशा (रज़ि.) थीं। फिर उन्होंने कहना शुरू किया कि:

"हम क़ुरैश के लोग अपनी औरतों को दबाकर रखा करते थे। जब हम मदीना आए तो हमें ऐसे लोग मिले जिनपर उनकी बीवियाँ हावी थीं। (यह भी था कि यहाँ नबी (सल्ल.) बीवियों पर नर्मी की हिदायत भी करते थे और ख़ुद नमूना पेश करते थे) यही सबक़ हमारी बीवियों ने सीखा। एक दिन मैं अपनी बीवी पर नाराज़ हुआ तो मेरी बीवी ने पलट कर मुझे जवाब दिया, मुझे बहुत बुरा लगा। बीवी ने कहा, "आप इस बात पर बुरा क्यों मानते हैं ख़ुदा की क़सम! नबी (सल्ल.) की बीवियाँ नबी (सल्ल.) को जवाब देती हैं।" यह सुनकर मैं घर से

निकला, हफ़्सा के घर गया। मैंने पूछा, "बेटी! क्या तू नबी (सल्ल.) को पलटकर जवाब देती है?" हफ़्सा (रज़ि.) ने कहा, "हाँ" मैंने फिर पूछा कि, "तुममें से कोई नबी (सल्ल.) से रूठ भी जाती है?" हफ़्सा (रज़ि.) ने कहा, "हाँ" मैंने कहा कि, "नामुराद होगई और घाटे में पड़ गई वह औरत जो तुममें से ऐसा करे। क्या तुम में से कोई ऐसी निडर हो गई है कि अपने नबी के ग़ज़ब की वजह से अल्लाह उसपर सख़्त गुस्सा हो जाए और वह हलाकत में पड़ जाए। देख! अल्लाह के नबी (सल्ल.) के साथ कभी बढ़-बढ़कर बातें न करना और उनसे किसी चीज़ की माँग न करना, मेरे माल से तेरा जो जी चाहे माँग ले। तू इस बात से किसी धोखे में न पड़ना कि तेरी पड़ोसन (यानी आइशा (रज़ि.) तुझ से ज़्यादा खूबसूरत और नबी (सल्ल.) को ज़्यादा प्यारी है।" उसके बाद मैं वहाँ से निकलकर हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि.) के पास पहुँचा। यह मेरी रिश्तेदार (और ख़ानदानी) थीं। मैंने उस मामले में उनसे बात की। हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि.) ने कहा, "तुम भी अजीब आदमी हो हर मामले में तुमने दख़ल दिया, यहाँ तक कि अब नबी (सल्ल.) और उनकी बीवियों के बारे में भी दख़ल देते हो।" उनकी बात ने मेरी हिम्मत तोड़ दी। फिर ऐसा हुआ कि एक अंसारी पड़ोसी रात के वक़्त मेरे घर आया। उसने मुझे पुकारा। हम दोनों बारी-बारी नबी (सल्ल.) की सभा में जाया करते थे और जो बात किसी की बारी के दिन होती थी, वह दूसरे को बता देता था। उस वक़्त हमें क़बीला ग़स्सान के हमले का डर लगा हुआ था। उसके पुकारने पर जब मैं निकला तो उसने कहा कि बहुत बड़ा हादसा हो गया है। मैंने कहा, "क्या ग़स्सानी चढ़ आए हैं?" असानी ने कहा, "उससे भी बड़ा हादसा है। नबी (सल्ल.) ने अपनी बीवियों को तलाक़ दी है।" मेरी ज़बान से निकला कि, "बरबाद हो गई और नामुराद हो गई हफ़्सा। मुझे पहले ही अन्देशा था कि यह होनेवाली बात है।"

उसके बाद हज़रत उमर (रज़ि.) ने नबी (सल्ल.) के ग़ुस्से को किस तरह शान्त किया, यह बात ऊपर बयान की जा चुकी है। यहाँ यह बात खोलनी थी कि उन दो बीवियों के नाम तो लोगों ने जान लिए लेकिन फिर उन बीवियों ने जिस तरह राज़ को राज़ रहने दिया, उसकी शान यह है कि यह राज़ आज तक राज़ है।

उसके बाद नबी (सल्ल.) दो साल और ज़िन्दा रहे। फिर कोई ऐसी घटना नहीं हुई जो बताने के लायक़ हो। ऐसा लगता है कि यह हज़रत आइशा (रज़ि.) के लिए तरबियत का आख़िरी सबक़ था, जिसके बाद उन्हें कामिल यानी मुकम्मल नमूना बनना था।

नबी (सल्ल.) का इन्तिक़ाल

पिछले पन्नों में बताया जा चुका है कि यह हज़रत आइशा (रज़ि.) की ख़ुशनसीबी थी कि वे दूसरी पाक बीवियों के मुक़ाबले कम उम्र में नबी (सल्ल.) के निकाह में आईं। उन्होंने नबी (सल्ल.) से वह सबकुछ सीखा जो दूसरे नहीं सीख सके। नबी (सल्ल.) ने भी हज़रत आइशा (रज़ि.) को तालीम व तरबियत देने में बहुत मेहनत और ध्यान दिया। यह सिलसिला नौ साल तक चलता रहा। उसके बाद नबी (सल्ल.) का इन्तिक़ाल हो गया और वे बेवा हो गईं।

नबी (सल्ल.) के इन्तिक़ाल के सारे हालात हमें हज़रत आइशा (रज़ि.) ही से पता चले जो इस तरह हैं:-

हिजरी महीना, सफ़र सन् 11 हिजरी की बात है। एक दिन हज़रत आइशा (रज़ि.) के सिर में दर्द उठा, दर्द बहुत तेज़ था कि वे, "हाय मेरा सिर, हाय मेरा सिर" कहकर कराह रही थीं। इतने में नबी (सल्ल.) कमरे में आए। नबी (सल्ल.) ने उन की हालत देखी और ज़बान से कहते सुना तो आपने सिर पकड़ कर कहा, "हाय मेरा सिर" उसी वक़्त से नबी (सल्ल.) के सिर में अचानक तेज़ दर्द शुरू हुआ। वह दिन उम्मुल मोमिनीन हज़रत मैमूना (रज़ि.) की बारी का था, इस लिए नबी (सल्ल.) उनके घर चले गए और जाकर लेट गए। मैमूना (रज़ि.) से पूछा कि मैं कल कहाँ रहूँगा यानी कल किस बीवी की बारी का दिन है। उसके बाद बारी-बारी से नबी (सल्ल.) पाक बीवियों के घर जाते रहे और रहते रहे और हर एक से यही पूछते रहे कि कल मैं कहाँ रहूँगा ? उन्हीं दिनों में हज़रत आइशा (रज़ि.) ने ख़्वाब में देखा कि तीन चाँद आसमान से टूट कर उनके कमरे में आ गिरे। उन्होंने हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) से ख़्वाब की ताबीर पूछी, वे चुप रहे।

पाक बीवियाँ जानती थीं कि नबी (सल्ल.) को हज़रत आइशा (रज़ि.) से कितनी मुहब्बत है। हज़रत आइशा (रज़ि.) की याददाश्त तमाम बीवियों से

अच्छी थी। सबने यह समझा कि हज़रत आइशा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) की एक-एक बात जिस तरह याद रखती हैं, वह उन्हीं का हिस्सा है। शायद नबी (सल्ल.) के पूछने का यह मतलब है कि बीमारी के ज़माने के हालात पूरी तरह महफ़ूज़ रहें, इसलिए बार-बार यह पूछते हैं कि कल मैं कहाँ रहूँगा। यह समझ कर सबने इजाज़त दे दी कि नबी (सल्ल.) हज़रत आइशा (रज़ि.) ही के कमरे में रहें। चुनाँचे फिर आप जितने दिन बीमार रहे हज़रत आइशा (रज़ि.) ही के कमरे में रहे और उस कमरे ही में नबी (सल्ल.) का इन्तिकाल हुआ। दूसरी पाक बीवियाँ (रज़ि.) भी उसी कमरे में नबी (सल्ल.) की तीमारदारी (देख-भाल) किया करती थीं।

बीमारी की हालत में मर्ज़ बढ़ता गया, यहाँ तक कि नबी (सल्ल.) में इतनी ताक़त न रही कि वे कमरे से निकल कर मस्जिद में जा सकते। सुबह के वक़्त नमाज़ के लिए सहाबा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के आने का रास्ता देख रहे थे। नबी (सल्ल.) ने बार-बार उठने की कोशिश की, लेकिन न उठ सके तो हुक्म दिया कि अबू बक्र (रज़ि.) नमाज़ पढ़ाएँ। हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि मैं वालिद (अबू बक्र रज़ि.) के बारे में जानती थी कि उनका दिल बहुत नर्म है। वे अगर नबी (सल्ल.) की जगह खड़े हो गए तो नबी (सल्ल.) की ग़ैर-मौजूदगी से रो पड़ेंगे और नमाज़ न पढ़ा सकेंगे। मैंने नबी (सल्ल.) से कहा कि किसी दूसरे को हुक्म दीजिए कि वह नमाज़ पढ़ाए। लेकिन नबी (सल्ल.) ने फिर यही हुक्म दिया तो आइशा (रज़ि.) ने हज़रत हफ़्सा (रज़ि.) से कहा कि आप नबी (सल्ल.) से कहें। हज़रत हफ़्सा (रज़ि.) ने भी नबी (सल्ल.) से कहा लेकिन नबी (सल्ल.) ने कहा कि अबू बक्र (रज़ि.) ही इमामत करें यानी नमाज़ पढ़ाएँ।

बीमारी के दिनों में नबी (सल्ल.) को याद आया कि एक दिन हज़रत आइशा (रज़ि.) को कुछ अशरफ़ियाँ रखने को दी थीं। नबी (सल्ल.) ने हज़रत आइशा (रज़ि.) से पूछा, "वे अशरफ़ियाँ कहाँ हैं, उन्हें ख़ैरात कर दो। मुहम्मद अल्लाह से बद-गुमान होकर नहीं मिलेगा।"

ज़रा ठहर कर सोचिए, क्या ख़याल है आपका। क्या हज़रत आइशा (रज़ि.) ने वे अशरफ़ियाँ ख़ैरात कर दी होंगी या चुपके से कहीं रख दी होंगी कि ख़ुदा जाने कल क्या हो। आम तौर पर देखा जाता है कि जब शौहर बीमार पड़ जाता है तो बीवियाँ अपने आनेवाले कल की फ़िक्र में पड़ जाती हैं और शौहर

की कमाई से जो रक़म घसीट पाती हैं, छुपाकर रख लेती हैं और अगर उनसे पूछा जाता है तो कह देती हैं कि रक़म ख़र्च हो गई। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने कल की फ़िक्र नहीं की, वे भी अल्लाह को राज़िक़ समझती थीं और अल्लाह की तरफ़ से बद- गुमान होना, गुनाह समझती थीं। उन्होंने अशरफ़ियाँ निकालीं और ख़ैरात कर दीं।

इन्तिक़ाल से कुछ पहले हज़रत आइशा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के सिराहने बैठी थीं। इतने में हज़रत अब्दुर्रहमान (हज़रत आइशा (रज़ि.) के भाई) मिस्वाक लिए हुए आए। नबी (सल्ल.) ने मिस्वाक की तरफ़ देखा, हज़रत आइशा (रज़ि.) समझ गईं कि नबी (सल्ल.) मिस्वाक करना चाहते हैं। उन्होंने भाई से मिस्वाक ले ली, अपने दाँतो से चबाकर नर्म की, उसके बाद नबी (सल्ल.) को दी। नबी (सल्ल.) ने तन्दुरुस्त आदमी की तरह मिस्वाक की।

हज़रत आइशा (रज़ि.) और सब बीवियाँ नबी (सल्ल.) की सेहत के लिए दुआएँ कर रही थीं। हज़रत आइशा (रज़ि.) दुआएँ पढ़-पढ़ कर नबी (सल्ल.) पर दम (फूँक) कर रही थीं। आप (सल्ल.) का हाथ उनके हाथ में था। अचानक नबी (सल्ल.) ने हाथ भींच लिया और कहा, "ऐ अल्लाह! तू मेरा सबसे बड़ा रफ़ीक़ (साथी) है।" यह सुनकर हज़रत आइशा (रज़ि.) चौंक पड़ीं और उस जुमले का मतलब समझ गईं कि अब नबी (सल्ल.) हम सबका साथ छोड़ रहे हैं और सिर्फ़ अल्लाह को साथी बना रहे हैं। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आपको बड़ी तकलीफ़ है" नबी (सल्ल.) ने जवाब दिया, "सवाब भी तो इसी ताल्लुक़ से है।"

हज़रत आइशा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) को सँभाल कर बैठ गईं। उन्हें महसूस हुआ कि नबी (सल्ल.) के जिस्म का बोझ बढ़ रहा है। उन्होंने नबी (सल्ल.) का सिर तकिए पर रख दिया और लिटा दिया। जैसे ही लिटाया नबी (सल्ल.) की आँखें फटकर छत से जा लगीं। हज़रत आइशा (रज़ि.) रोने लगीं सबको मालूम हो गया कि नबी (सल्ल.) अपने सबसे बड़े दोस्त व साथी यानी अल्लाह तआला से जा मिले। फिर हज़रत आइशा ही के कमरे में दफ़्न किए गए। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने बेटी आइशा से कहा, "आइशा! यह तेरे ख़्वाब का पहला चाँद है जो बाक़ी दो चाँदों से आला और बुलन्द है।

हज़रत आइशा (रज़ि.) को नबी (सल्ल.) की बदौलत जो इज़्ज़त हासिल

हुई थी, वे अक्सर बयान किया करती थीं। इस सिलसिले में वे नबी (सल्ल.) की बीमारी के ज़माने के हालात बयान करके कहती थीं कि आख़िर वक़्त में नबी (सल्ल.) ने मेरा झूठा (मिस्वाक की तरफ़ इशारा है) अपने मुँह में लिया, मेरे कमरे में रहे, मेरी ही गोद में वफ़ात (मौत) पाई और मेरे ही कमरे में दफ़्न हुए।

बेशक यह ख़ास शान व इज़्ज़त हज़रत आइशा (रज़ि.) को हासिल थी। कई बार ऐसा हुआ कि उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) के बिस्तर पर वह्य नाज़िल हुई। हज़रत आइशा (रज़ि.) की शान में ऐसी आयतें नाज़िल हुईं जिनसे इस्लामी आलिमों ने बड़े-बड़े मसले मालूम किए। हज़रत आइशा (रज़ि.) की पाकदामनी की गवाही अल्लाह ने दी। आइशा (रज़ि.) ने जिबरील (अलै.) को अपनी आँखों से देखा और सबसे बड़ी बात यह कि हज़रत आइशा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) की सबसे प्यारी बीवी थीं और उन्होंने सबसे ज़्यादा नबी (सल्ल.) की सोहबत में तालीम व तरबियत हासिल की और उन्हीं को अल्लाह तआला ने यह तौफ़ीक़ दी थी कि वे दुनिया भर की औरतों के लिए कामिल नमूना बनें।

हम जानते हैं क़ुरआन के अन्दर नबी (सल्ल.) की पाक बीवियों के बारे में कहा गया है –

> "(ऐ नबी की बीवियो!) अल्लाह तो यही चाहता है कि तुम्हारे अन्दर से मैल-कुचैल दूर करके तुम को बिल्कुल पाक-साफ़ करदे। तुम्हारे घरों में ख़ुदा की जो आयतें और हिकमत की जो बातें पढ़कर सुनाई जा रही हैं, उनको याद करो, बेशक अल्लाह पाक और ख़बर रखनेवाला है।" (क़ुरआन, 33 : 33-34)

आगे चलकर यह बताया जाएगा कि अल्लाह तआला ने जो अपनी यह मर्ज़ी बयान की तो बेशक तमाम पाक बीवियाँ (रज़ि.) अल्लाह की ख़ुशी व रिज़ा पाने के लिए उम्र भर कोशिश करती रहीं और उन्होंने अपने बस भर कोई कोताही नहीं की। लेकिन यह बुलन्द मक़ाम व मर्तबा जिसे मिलना था उसे मिला। यानी हज़रत आइशा (रज़ि.) उस मैदान में सबसे आगे निकल गईं।

नबी (सल्ल.) के बाद

पहला ईसार (त्याग)

आम तौर पर देखा जाता है और देखा गया है कि शौहर की ज़िन्दगी में बीवी उसके इशारों पर चलती है लेकिन शौहर के इन्तिक़ाल के बाद वह उन बातों को भूल जाती है जिनकी तालीम शौहर दिया करता था, ख़ासतौर पर माल के मामले में वह बहुत चौकन्ना हो जाती है। वह समझती है कि अब बेवा होकर दिन कैसे गुज़ारेगी। ज़िन्दगी बिताने के लिए पैसा कहाँ से आएगा और जब उसे यह यक़ीन भी हो जाए कि उसकी शादी भी नहीं हो सकती तो उसे यह फ़िक्र और भी ज़्यादा हो जाती है। लेकिन नबी (सल्ल.) को अल्लाह तआला ने ऐसी पाक बीवियाँ दी थीं कि उन्हें नबी (सल्ल.) के बाद इस नाज़ुक हालत का कभी ख़याल नहीं आया। वे जानतीं थीं कि वे सारे मुसलमानों की माँ हैं और अब उनकी शादी शरीअत के मुताबिक़ मना है। नबी (सल्ल.) ने उन्हें जो तालीम दी थी उसका जौहर (कमाल) अस्ल में उस वक़्त खुला जब पाक बीवियों के बीच से नबी (सल्ल.) चले गए। हमने पाक बीवियों (रज़ि.) की ज़िन्दगी के क़िस्से बड़ी बारीक नज़र से पढ़े। हमने पाक बीवियों (रज़ि.) को दीनी तालीम का चलता-फिरता नमूना पाया। उन नमूनों में सबसे ज़्यादा उभरा हुआ जो नमूना हमारे सामने आया वह नमूना है हज़रत आइशा (रज़ि.) का।

जिस दिन नबी (सल्ल.) का इन्तिक़ाल हुआ याद होगा कुछ अशरफ़ियाँ घर में रखी थीं। नबी (सल्ल.) ने वे ख़ैरात करा दी थीं और उस दिन घर में अल्लाह के नाम के सिवा कुछ न था। नबी (सल्ल.) के इन्तिक़ाल के बाद हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ख़लीफ़ा चुने गए। उनके सामने सबसे पहले मुक़द्दमा नबी (सल्ल.) की जायदाद के बँटवारे का आया। नबी (सल्ल.) ने छोड़ा ही क्या था जिसे पाक बीवियाँ (रज़ि.) पाएँ, ले देकर कुछ बाग़ थे, उन बाग़ों की आमदनी भी दीन के कामों में और ग़रीबों और यतीमों पर ख़र्च की जाती थी।

पाक बीवियाँ चाहती थीं कि ये बाग़ आपस में बाँट लें। लेकिन हज़रत आइशा (रज़ि.) ने सबको याद दिलाया कि नबी (सल्ल.) ने अपनी ज़िन्दगी में

बता दिया था कि नबी का कोई वारिस नहीं होता और मेरी सारी जायदाद सदक़ा होगी। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने यह याद दिलाया तो सब बीवियों ने जायदाद से हाथ उठा लिया और हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) से कह दिया कि इन बाग़ों की आमदनी बैतुलमाल में जमा होगी और उसी तरह ख़र्च होगी जैसे नबी (सल्ल.) ख़र्च किया करते थे।

नबी (सल्ल.) की बीवियों (रज़ि.) के इस ईसार (त्याग) और उनकी इस क़ुरबानी की क़द्र हमारी नज़र में उस वक़्त और भी बढ़ जाती है जब हम यह देखते हैं कि उस वक़्त पाक बीवियों (रज़ि.) के घरों में बरकत ही बरकत थी। साथ ही हम यह भी देखते हैं कि इस किरदार का सेहरा हज़रत आइशा (रज़ि.) के सिर है।

दूसरा ईसार

हज़रत आइशा (रज़ि.) के वालिद हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के इन्तिक़ाल के बाद दो साल ज़िन्दा रहे। उन्होंने कुछ जायदाद बेटी को दी थी। जब उनके इन्तिक़ाल का वक़्त आया तो उन्होंने बेटी से कहा, "प्यारी बेटी! क्या तुम वह जायदाद अपने भाई-बहनों को दे दोगी?" हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जवाब दिया, "बेशक" और वह जायदाद भाई बहनों को दे दी।

यतीमी का दाग़

उसके बाद हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) और हज़रत आइशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) में यह बातचीत हुई:-

हज़रत अबूबक्र (रज़ि.): "नबी (सल्ल.) के कफ़न में कितने कपड़े थे?"

हज़रत आइशा (रज़ि.): "तीन कपड़े।"

हज़रत अबूबक्र (रज़ि.): "नबी (सल्ल.) का इन्तिक़ाल किस दिन हुआ था?"

हज़रत आइशा (रज़ि.): "दो शम्बा (यानी सोमवार) के दिन।"

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.): "आज कौन-सा दिन है।"

हज़रत आइशा (रज़ि.): "आज दो शम्बा (सोमवार) है।"

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.): "तो आज हमारा भी वक़्त क़रीब है।"

इस बात चीत के बाद हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने अपनी चादर देखी। उसपर ज़ाफ़रान (केसर) के कुछ धब्बे थे। बेटी से कहा कि इसे धोकर, इसी में मुझे क़फ़नाना। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने कहा कि यह तो पुराना है। अबू बक्र (रज़ि.) ने कहा, "नए कपड़ों की ज़रूरत मुर्दों से ज़्यादा ज़िन्दों को होती है।"

यदि इस वक्त हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) की सीरत (जीवनी) के बारे लिखना उद्देश्य होता तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के उस आख़िरी जुमले की याद आज की नई दुनिया के बुद्धिजीवियों को दिलाई जाती कि देखो इस्लामी शासकों के इस नमूने को। इस्लामी शासक ऐसे होते हैं। लेकिन इस समय तो केवल हज़रत आइशा (रज़ि.) की ज़िन्दगी का नक़्शा पेश करना है इसलिए उसी विषय पर आइए।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) उसी सोमवार को इन्तिक़ाल कर गए और हज़रत आइशा (रज़ि.) यतीम हो गईं। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) हज़रत आइशा (रज़ि.) ही के कमरे में दफ़्न किए गए। हज़रत आइशा (रज़ि:) ने बाप की क़ब्र नबी (सल्ल.) के बग़ल में देखी तो अचानक वह ख़्वाब याद आ गया कि आसमान के तीन चाँद टूटकर उस कमरे में आ गिरे। दिल में कहा कि यह दूसरा चाँद है।

तीसरा चाँद

हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के बाद हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) ख़लीफ़ा बने। उन्होंने तमाम मुसलमानों के वज़ीफ़े (गुज़ारे की रक़म) तय की और पाक बीवियों का वज़ीफा दस-दस हज़ार दिरहम तय हुआ। लेकिन उनमें से हज़रत आइशा (रज़ि.) का वज़ीफ़ा बारह हज़ार दिरहम सालाना तय किया। पूछा गया कि ऐसा क्यों किया गया। जवाब दिया, "आइशा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) को ज़्यादा महबूब (प्यारी) थीं।"

हज़रत उमर (रज़ि.) इसी वजह से तोहफ़ों को बाँटते वक़्त भी हज़रत आइशा (रज़ि.) को अहमियत दिया करते थे। गोश्त बाँटते तो सिरी और पाए

हज़रत आइशा (रज़ि.) के घर भेजते। एक बार मोतियों की एक डिब्रिया ग़नीमत के माल (युद्ध में प्राप्त माल) में आई। आप (रज़ि.) ने देखा कि इसमें मोती कम हैं। पाक बीवियों में बाँटना मुम्किन नहीं। मुसलमानों से कहा, "अगर आप लोगों की राय हो तो ये मोती आइशा (रज़ि.) को दे दूँ और फिर वही बात दोहराई कि वे नबी (सल्ल.) को बहुत प्यारी थीं। सबने ख़ुशी से इजाज़त दे दी। मोतियों की डिबिया हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास भिजवा दी गई। लेकिन हज़रत आइशा (रज़ि.) को हज़रत उमर (रज़ि.) का यह तर्जीह या अहमियत देना पसन्द नहीं था। मोतियों की डिबिया आई तो हज़रत आइशा (रज़ि.) बोलीं, "ऐ अल्लाह! उमर (रज़ि.) के तोहफ़ों के लिए मुझे ज़िन्दा न रख।"

हज़रत उमर (रज़ि.) ने हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) की तरह ही शासन का काम किया। मौत का वक़्त आया तो अपने बेटे को उम्मुल मोमिनीन (रज़ि.) के पास भेजा कि सलाम के बाद कहें, "उमर की तमन्ना है कि वह अपने दोस्तों के पास दफ़्न हो।"

कमरे में एक ही क़ब्र की जगह और थी वह हज़रत आइशा (रज़ि.) ने अपने लिए रखी थी। लेकिन जब इस्लामी ख़लीफ़ा की दरख़ास्त आई तो कहा कि, "यह जगह मैंने अपने लिए रखी थी लेकिन उमर के लिए ख़ुशी-ख़ुशी यह ईसार (त्याग) करती हूँ।"

हज़रत उमर (रज़ि.) भी उसी हुजरे में दफ़्न किए गए। हज़रत आइशा (रज़ि.) के ख़्वाब का यह तीसरा चाँद भी वहीं आ गिरा।

तीसरे ख़लीफ़ा के ज़माने में

हज़रत उमर (रज़ि.) के बाद हज़रत उसमान (रज़ि.) ख़लीफ़ा हुए। हज़रत उसमान (रज़ि.) बहुत ही नर्म मिज़ाज और ख़ानदान का ख़याल रखनेवाले बुज़ुर्ग थे। अल्लाह तआला ने उनको माल भी दिया था। उस माल से वे अपने घराने के लोगों और रिश्तेदारों की ज़्यादा मदद करते थे। लोगों को यह शक हुआ कि हज़रत उसमान (रज़ि.) यह मदद बैतुलमाल से करते हैं तो हज़रत उसमान (रज़ि.) ने सहाबा (रज़ि.) के सामने बताया कि मदद बैतुलमाल से नहीं दी जाती बल्कि मैं अपने पास से देता हूँ। हज़रत अली (रज़ि.), हज़रत तलहा (रज़ि.), हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.) जैसे सहाबा ने इस बात की तसदीक़ (पृष्टि) की और लोगों का शक जाता रहा।

कुछ दिनों के बाद कुछ ऐसी मुश्किलें और मजबूरियाँ आ पड़ीं कि हज़रत उसमान (रज़ि.) ने अपने ख़ानदान के लोगों को बड़े-बड़े पद (ओहदे) देना शुरू कर दिए। जनता में इस पर एतराज़ उठ खड़ा हुआ। बुज़ुर्ग सहाबा तलहा (रज़ि.), ज़ुबैर (रज़ि.), हज़रत अली (रज़ि.) ने हज़रत उसमान (रज़ि.) को समझाया लेकिन कोई नतीजा न निकला।

उसी ज़माने में एक यहूदी मुसलमान हुआ। उसे इब्ने सबा कहा जाता है। कहते हैं कि वह दिखावे का मुसलमान हुआ था और इसलिए हुआ कि मुसलमानों में मन-मुटाव फैलाए। इब्ने सबा बहुत ज़हीन और होशियार आदमी था। उसने हज़रत उसमान (रज़ि.) की पालिसी (नीति) को भाँप लिया और सोच लिया कि अब मौक़ा है कि मुसलमानों के अन्दर बिखराव और बिगाड़ पैदा किया जा सकता है। उसकी होशियारी देखिए कि वह मदीना में नहीं आया। मदीना से दूर-दूर रहा और जो दिल में सोचा था उसका प्रोपेगण्डा करता रहा। उसने लोगों से यह कहना शुरू कर दिया कि अस्ल में नबी (सल्ल.) के बाद ख़िलाफ़त के हक़दार तो हज़रत अली (रज़ि.) थे और उन्हीं के लिए नबी (सल्ल.) ने वसीयत भी की थी। उसने मदीना से दूर स्थानों का दौरा किया। वह मिस्र, कूफ़ा और बसरा गया और जहाँ-जहाँ भी गया उसने यही बातें फैलाईं।

इब्ने सबा कूफ़ा पहुँचा और वहाँ उसने नबी (सल्ल.) और हज़रत अली (रज़ि.) के हाशमी होने के नाते वही प्रोपेगण्डा शुरू कर दिया कि ख़िलाफ़त के हक़दार तो हज़रत अली (रज़ि.) हैं क्योंकि वे नबी (सल्ल.) के दामाद हैं और उनके बारे में नबी (सल्ल.) ने बहुत-सी अहम और ख़ास बातें बयान की हैं।

एक तरफ़ नए गवर्नरों की कमज़ोरियाँ, दूसरी तरफ़ इब्ने सबा का यह प्रोपेगण्डा, इन दोनों बातों ने एक ख़तरा पैदा कर दिया। हज का ज़माना आया तो मिस्र, कूफ़ा और बसरा से कई हज़ार आदमी हज के बहाने से आए। लेकिन असल में उनका काम यह था कि मदीना में चलकर हज़रत उसमान (रज़ि.) के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाएँ। उन सबने आकर मदीना के क़रीब पड़ाव डाल दिया। बड़े-बड़े सहाबा (रज़ि.) को मालूम हुआ तो वे उनसे जाकर मिले। उनमें हज़रत अली (रज़ि.) भी थे, उन्होंने उन लोगों को समझाया-बुझाया। तय यह पाया कि इब्ने अबी सराह को गवर्नर के पद से हटा दिया जाएगा और मुहम्मद बिन अबी बक्र (रज़ि.) को उनकी जगह गवर्नर बना दिया जाएगा। यह तय होने के बाद ये चारों तरफ़ से आए हुए लोग वापस चले गए। मुहम्मद बिन अबी बक्र (रज़ि.) मिस्र की गवर्नरी का हुक्म नामा लिए हुए उनके साथ थे। रास्ते में उन लोगों ने एक व्यक्ति को पकड़ा, उसकी तलाशी ली तो उसके पास एक ख़त निकला। यह ख़त मिस्र के गवर्नर के नाम था लिखा था कि– मुहम्मद बिन अबी बक्र और उनके साथियों को क़त्ल कर देना ये सब विद्रोही हैं।

उस ख़त पर हज़रत उसमान (रज़ि.) की मुहर लगी हुई थी। मुहम्मद बिन अबी बक्र (रज़ि.) ख़त लेकर लौट पड़े और उन्होंने तमाम सहाबा (रज़ि.) की मौजूदगी में यह ख़त हज़रत उस्मान (रज़ि.) के सामने पेश किया। हज़रत उसमान (रज़ि.) ने कानों पर हाथ रखा और फ़रमाया कि, "ख़ुदा की क़सम मैंने यह ख़त नहीं लिखा।"

हज़रत उसमान (रज़ि.) ने यह कहा तो लोगों ने यह माँग कर दी कि फिर आप अपने सेकेट्री को हमारे हवाले करें, यह हरकत उसी की है या फिर आप ख़िलाफ़त छोड़ दीजिए।

हज़रत उसमान (रज़ि.) ने ख़िलाफ़त का काम छोड़ने से इंकार कर दिया,

क्योंकि हज़रत आइशा (रज़ि.) की एक रिवायत के मुताबिक़ नबी (सल्ल.) ने उनसे कहा था कि अगर अल्लाह तआला तुम को ख़िलाफ़त दे, तो तुम उसे अपनी ख़ुशी से मत छोड़ना। रहा सेक्रेट्री का मामला, तो हज़रत उसमान (रज़ि.) को यह यक़ीन हो गया कि ये लोग उसे क़त्ल कर देंगे। जबकि यह नहीं मालूम था कि यह ख़त की साज़िश किसने की। कहीं ऐसा न हो कि शक के आधार पर एक बेगुनाह क़त्ल कर दिया जाए।

हज़रत उस्मान (रज़ि.) ने दोनों माँगें रद्द कर दीं तो बुज़ुर्ग सहाबा (रज़ि.) जो हज़रत उसमान (रज़ि.) की असूल ताक़त थे, वे ख़ामोश होकर अपने घरों में जाकर बैठ गए। मुहम्मद बिन अबी बक्र (रज़ि.) और उनके साथी बिफर गए, उन्होंने हज़रत उसमान (रज़ि.) के घर को घेर लिया और कहा कि उन दोनों शर्तों में से एक शर्त मंज़ूर करो।

कुछ लोग हज़रत उसमान (रज़ि.) के इतने ख़िलाफ़ हो गए कि उन्होंने उनके घर को घेर लिया और घर में घुसकर उनको क़त्ल कर दिया। हज़रत उसमान (रज़ि.) ने इन विद्रोहियों के ख़िलाफ़ ताक़त इस्तेमाल करने से अपने लोगों को मना कर दिया था ताकि उनकी वजह से मुसलमानों में बाहम ख़ून-ख़राबा न हो।

तीसरे ख़लीफ़ा हज़रत उसमान (रज़ि.) की शहादत के बाद हज़रत अली (रज़ि.) ख़लीफ़ा बनाए गए।

हज़रत अली (रज़ि.) के ख़लीफ़ा होने के बाद सबसे पहला मुक़द्दमा यह उठ खड़ा हुआ कि हज़रत उसमान (रज़ि.) के क़ातिलों को सज़ा दी जाए। हज़रत अली (रज़ि.) ने सज़ाओं की माँग करनेवालों से कहा कि ज़रा शासन की व्यवस्था ठीक हो जाए तो उस तरफ़ ध्यान दिया जाएगा। लेकिन सज़ा की माँग ने ज़ोर पकड़ा तो विद्रोही घबराए। उन्होंने अपनी कुशलता इसी में समझी कि जो लोग सज़ाओं की माँग कर रहे हैं उनके और हज़रत अली (रज़ि.) के बीच सन्धि न हो सके। उन लोगों ने सोचा कि क्यों न उन लीडरों को ही रास्ते से हटा दिया जाए, जो सज़ाओं की माँग करनेवालों के सरदार बने हुए हैं। उनके ख़याल के मुताबिक़ ये लोग हज़रत तलहा (रज़ि.) और हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.) थे। विद्रोही

इन बुज़ुर्गों के पीछे पड़ गए। उन बुज़ुर्गों ने बेहतरी इसी में देखी कि वे मदीना से निकल जाएँ। चुनाँचे एक रात वे मदीना से निकल गए।

हज़रत आइशा (रज़ि.) हज करके वापस आ रही थीं, रास्ते में उन्होंने हज़रत उसमान (रज़ि.) के शहीद होने की ख़बर सुनी। आगे बढ़ीं तो तलहा (रज़ि.) और ज़ुबैर (रज़ि.) मिले। उनसे ख़ैरियत पूछी तो उन्होंने बताया कि हम विद्रोहियों के हाथों परेशान होकर मदीना से निकले हैं और लोगों को इस हाल में छोड़ा है कि वे बिल्कुल बेबस हैं। उनमें न तो सच को सच कहने की हिम्मत है और न झूठ से इंकार करने की। क्योंकि वे अपनी हिफ़ाज़त नहीं कर सकते।

हज़रत आइशा (रज़ि.) ने कहा, "आपस में मशविरा करो कि इस वक़्त हमें क्या करना चाहिए।" उसके बाद हज़रत आइशा (रज़ि.) मक्का चली गईं। लोग उम्मुल मोमिनीन के आस-पास जमा होने लगे। उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) ने क़ुरआन की सूरा हुजुरात की यह आयत पढ़ी कि "अगर दो मुसलमान जमाअतें लड़ जाएँ तो उन दोनों में सुलह करा दो फिर अगर एक-दूसरे पर ज़ुल्म करे तो ज़ुल्म करनेवाली जमाअत से लड़ो। यहाँ तक कि वह अल्लाह के हुक्म को मान ले और जब मान ले तो दोनों में सुलह करा दो।"

हज का ज़माना था ही, सुलह के मक़सद से मुसलमानों को पुकारा गया तो छः हज़ार आदमी इकट्ठा हो गए। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने कहा कि मदीना की तरफ़ चले जाना चाहिए। मशविरा दिया गया कि अगर बसरा की तरफ़ चलें तो बड़ी जमाअत हो सकती है। उम्मुल मोमिनीन का कहना था कि विद्रोही और सबाई मदीना ही में हैं इसलिए मदीना ही चलना चाहिए। लेकिन फिर सबके मशविरे से वे सहमत हो गईं और बसरा की तरफ़ चलीं। दूसरी उम्महातुल-मोमिनीन कुछ दूर तक भेजने के लिए साथ गईं, उसके बाद वे वापस चली आईं।

जैसे-जैसे यह जमाअत आगे बढ़ती गई, जमाअत में लोगों की तादाद भी बढ़ती गई। रास्ते में 'हव्वाब' नामक एक जगह पड़ती थी उसके किनारे एक तालाब था, उस तालाब के किनारे बहुत से कुत्ते खड़े थे, उन कुत्तों ने एक भारी भीड़ देखी तो सब भौंकने लगे। कुत्तों के भौंकने की आवाज़ सुनी तो हज़रत आइशा (रज़ि.) चौंक पड़ीं। तालाब देखा तो नबी (सल्ल.) की एक पेशनगोई

(भविष्यवाणी) याद आ गई। हज़रत आइशा (रज़ि.) ख़ुद कहती हैं कि, "जब हव्वाब आया तो कुत्तों के भौंकने की आवाज़ मैंने सुनी। मैंने कहा कि अब मैं वापस हो जाऊँगी क्योंकि एक बार नबी (सल्ल.) ने हम उम्महातुल मोमिनीन से फ़रमाया था कि ख़ुदा जाने, तुम में से किस पर हव्वाब के कुत्ते भौकेंगे" तो ज़ुबैर (रज़ि.) ने कहा, "क्या आप वापस हो जाएँगी। हो सकता है कि अल्लाह तआला आपकी वजह से लोगों में सुलह करा दे।"

अचानक एक शोर मच गया कि चलो आगे बढ़ो, हज़रत अली (रज़ि.) की फ़ौजें आ रही हैं। क़ाफ़िला चल पड़ा, सब बसरा पहुँचे। पीछे-पीछे हज़रत अली (रज़ि.) के तरफ़दार भी बसरा पहुँचे और उनके साथ हज़रत हसन (रज़ि.) और उम्मार बिन यासिर (रज़ि.) थे। उनके आने से बसरा में तरह-तरह की बोलियाँ सुनी जाने लगीं। कोई दोनों तरफ़ के लोगों को सुलह की तरफ़ बुला रहा था। कोई विद्रोहियों और उसमान (रज़ि.) के क़ातिलों को सज़ाएँ दिलाने की माँग कर रहा था और कोई हज़रत अली (रज़ि.) की मदद करने पर उभार रहा था।

दोनों तरफ़ से जो प्रोपेगण्डा हुआ वह बहुत लम्बी बात है। मुख़्तसर तौर पर इतना कहा जा सकता है कि हज़रत उसमान (रज़ि.) के सेक्रेट्री मरवान और उसके ख़ानदानवालों ने इसी में अपनी ख़ैरियत देखी कि वे हज़रत उसमान (रज़ि.) के क़त्ल का क़िसास (ख़ून का बदला) लेनेवालों के गिरोह में शामिल हो जाएँ। जिस तरह सबाइयों की यह कोशिश थी कि दोनों तरफ़ के बुज़ुर्गों में सुलह न होने पाए, इसी तरह मरवान और उसके तरफ़दारों का मंशा भी यही था कि ये दोनों जमाअतें लड़ कर कमज़ोर हो जाएँ ताकि हज़रत मुआविया जो शाम (सीरिया) के गवर्नर थे और जो हज़रत उसमान (रज़ि.) की शहादत की वजह से हज़रत अली (रज़ि.) के ख़िलाफ़ थे उनके लिए परिस्थितियाँ अनुकूल हो जाएँ। मरवान और हज़रत मुआविया (रज़ि.) उमैया ख़ानदान से थे।

प्रोपेगण्डे के नतीजे में तीस हज़ार आदमी हज़रत आइशा (रज़ि.) हज़रत तलहा (रज़ि.) और हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.) के तरफ़दार हो गए। हज़रत अली (रज़ि.) भी यहीं आ गए। उस वक़्त उनकी फ़ौज में बीस हज़ार सिपाही थे।

हज़रत अली (रज़ि.), हज़रत आइशा (रज़ि.), हज़रत तलहा (रज़ि.),

हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.), हज़रत अम्मार बिन यासिर (रज़ि.) वे बुज़ुर्ग थे जो एक दूसरे के मरतबे को जानते थे। ये बुज़ुर्ग सिर जोड़कर बैठे कि सुलह की तदबीर करें। यह देखकर हज़रत उसमान (रज़ि.) के क़ातिल घबराए। सबाई सोचवाले लोग हज़रत अली (रज़ि.) के साथ थे। एक रात जब दोनों तरफ़ के लोग आराम की नींद सो रहे थे, सबाइयों ने हज़रत आइशा (रज़ि.) की तरफ़दार जमाअत पर छापा मारा। हज़रत अली (रज़ि.) को ख़बर हुई तो उन्होंने रोका। लेकिन उनमें से कोई न रुका। जंग शुरू हो गई। सुबह को हज़रत आइशा (रज़ि.) ने उस लड़ाई की वजह पूछी तो लोगों ने कहा कि आप सवार होकर चलें शायद आप को देख कर लोग लड़ने से बाज़ आ जाएँ। हज़रत आइशा (रज़ि.) लोहे के बने हौदे में ऊँट पर सवार होकर लड़ाई के मैदान में पहुँची। हज़रत अली (रज़ि.), हज़रत तलहा (रज़ि.) और हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.) को अपने पास बुलाया, ये दोनों घोड़ों पर सवार थे। इसी तरह हज़रत अली (रज़ि.) के पास पहुँचे। हज़रत अली (रज़ि.) ने दोनों को नबी (सल्ल.) की एक बात याद दिलाई कि– "तुम दोनों एक दिन अली से बग़ावत करोगे।" दोनों बुज़ुर्गों को यह बात याद आ गई। हज़रत तलहा (रज़ि.) और हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.) ने घोड़ों की लगामें मोड़ दीं और एक तरफ़ चल दिए। एक सबाई ने यह देखा तो ज़ुबैर (रज़ि.) के पीछे चला। रास्ते में नमाज़ पढ़ने के लिए हज़रत ज़ुबैर रुके, जब सजदा किया तो उसने तलवार मारी। हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.) का सिर धड़ से अलग हो गया। वह सबाई सिर और ज़ुबैर (रज़ि.) की तलवार लेकर हज़रत अली (रज़ि.) के पास आया, वे देखकर आँखों में आँसू भर लाए, फ़रमाया, "यह वह तलवार है जिसने कई बार नबी (सल्ल.) पर हमला करनेवालों के मुहँ फेरे," उसके बाद उस क़ातिल से कहा कि, "तू अपने इस कर्म के बदले निश्चय ही जहन्नम में जाएगा।"

मरवान ने तलहा (रज़ि.) को जाते देखा। उसने सोचा कि अगर ये हाथ से निकल गए तो बनी उमैया के लिए मैदान साफ़ न हो सकेगा। उसने ज़हर में बुझा हुआ तीर ताक कर मारा। तीर हज़रत तलहा (रज़ि.) के घुटने में लग गया और ये दूसरा सहाबी (रज़ि.) दुनिया से चल बसा।

अब रह गईं हज़रत आइशा (रज़ि.), उन का ऊँट लड़ाई के मैदान के बीच में खड़ा था। सबाई और विद्रोही लोगों का रुख़ अब उसी तरफ़ था। ये देख कर

हज़रत आइशा (रज़ि.) की तरफ़ के लोगों ने अपनी जानें लड़ा दीं। हज़रत आइशा (रज़ि.) के भाँजे अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) ऊँट के पास खड़े थे, जो दुश्मन इस तरफ़ बढ़ता उसका सिर उड़ा देते। फ़िदाई उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) को मुख़ातिब करके ये शेर पढ़ रहे थे– "ऐ हमारी माँ! ऐ हमारे नबी (सल्ल.) की बीवी हम इस ऊँट के निगराँ हैं मौत हमारे नज़दीक शहद से ज़्यादा मीठी है।"

हालत यह थी कि चारों तरफ़ सिर और हाथ कट-कट कर गिर रहे थे। यह देखकर हज़रत अली (रज़ि.) भीड़ को चीरते हुए ऊँट की तरफ़ बढ़े कि ऊँट को अपनी हिफ़ाज़त में ले लें। कुछ लोगों ने सोचा कि जब तक ऊँट खड़ा रहेगा, लोग इसी तरह मरते रहेंगे। उन्होंने बढ़कर उसके पिछले पाँव की कोचें काट दी, ऊँट धम्म से ज़मीन पर गिरा। हज़रत अली (रज़ि.) के साथ हज़रत अम्मार बिन यासिर (रज़ि.) और मुहम्मद बिन अबी बक्र (रज़ि.) थे, उन्होंने बढ़कर हौदे को सँभाला। मुहम्मद बिन अबी बक्र (रज़ि.) ने हौदे के अन्दर हाथ ले जाकर चाहा कि देखें चोट तो नहीं आई। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने हाथ देख कर डाँटा, "किस लानती का हाथ है?" अर्ज़ किया, "आपके भाई मुहम्मद बिन अबी बक्र (रज़ि.) का, बहन चोट तो नहीं आई?" इतने में हज़रत अली (रज़ि.) भी पहुँच गए, उन्होंने ख़ैरियत पूछी। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जवाब दिया कि "अच्छी हूँ।"

इसके बाद हज़रत अली (रज़ि.) ने हज़रत आइशा (रज़ि.) को मुहम्मद बिन अबी बक्र (रज़ि.) के साथ मक्का की तरफ़ भिजवा दिया और हिफ़ाज़त के लिए कुछ लोग साथ कर दिए। हज़रत हसन बिन अली (रज़ि.) बहुत दूर तक उनके साथ गए। हज़रत आइशा (रज़ि.) वहाँ से मदीना आईं और फिर मदीना ही में रहीं। जब उन्हें हव्वाब के कुत्तों का भौंकना याद आता तो बेहद अफ़सोस करती थीं। उन्हें यक़ीन हो गया कि उन्होंने ग़लती की और ग़लती पर उम्र भर पछताती रहीं। क़ुरआन की तिलावत करते वक़्त जब ये अल्फ़ाज़ पढ़तीं "ऐ नबी की बीवियो! अपने घरों में ठहरी रहो" (क़ुरआन, 33:4) तो इस क़द्र रोती थीं कि आँसू पोंछते-पोंछते आँचल तर हो जाता था।

इन्तिक़ाल

इस घटना के बाद हज़रत आइशा (रज़ि.) ने अपनी ज़िन्दगी बड़ी ख़ामोशी से गुज़ारी। इस ख़ामोशी में वे क़ुरआन और हदीस का पैग़ाम फैलाने में लगी रहीं। उसकी तफ़सील आगे बयान की जाएगी।

हज़रत अली (रज़ि.) चार साल ख़लीफ़ा रहे। उनके बाद हज़रत मुआविया (रज़ि.) ने इस्लामी हुकूमत की बागडोर अपने हाथों में ली। वे बीस साल हुकूमत करते रहे। इन्हीं के ज़माने में हज़रत आइशा (रज़ि.) का इन्तिक़ाल हुआ। इन्तिक़ाल के वक्त 67 साल की उम्र थी। रमज़ान 58 हिजरी में बीमार हुईं और उसी महीने की 17 तारीख़ को इन्तिक़ाल हुआ। उम्मुल मोमिनीन हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि.) ने फ़रमाया, "जन्नत उनके लिए वाजिब है, वे नबी (सल्ल.) की सबसे प्यारी बीवी थीं।"

हज़रत आइशा (रज़ि.) के इन्तिक़ाल की ख़बर हुई तो मदीना में एक हुजूम इकट्ठा हो गया। जनाज़ा रात के वक़्त उठा। लोगों का कहना है कि रात के वक़्त मदीना में कभी इतनी भीड़ नहीं देखी गई। हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) ने जनाज़े की नमाज़ पढ़ाई। जन्नतुल बक़ी के क़ब्रिस्तान में नबी (सल्ल.) की दूसरी पाक बीवियों (रज़ि.) की क़ब्रों के पास क़ब्र बनी। भतीजों, भांजों ने क़ब्र में उतारा। मुसलमानों ने आँसू बहाते हुए अपनी माँ को दफ़न किया। बाद में लोगों ने मदीनावालों से पूछा कि, "हज़रत आइशा (रज़ि.) के मरने का ग़म कितना हुआ?" मदीनावालों ने जवाब दिया, "वे जिस-जिस की माँ थीं उसने उनका ग़म किया।"

हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास एक जंगल था, वह जंगल उनके मरने के बाद उनकी बहन हज़रत असमा (रज़ि.) को मिला। उन्होंने एक लाख दिरहम में यह जंगल हज़रत मुआविया (रज़ि.) के हाथ बेच दिया और सारी रक़म ख़ैरात कर दी।

दीन का इल्म फैलाना

नबी (सल्ल.) ने जब आख़िरी हज अदा किया था तो उसमें एक ख़ुतबा दिया था। उसमें नबी (सल्ल.) ने बहुत-सी नसीहतें की थीं। उनमें से एक ख़ास नसीहत यह की थी कि इस वक़्त जो लोग मौजूद हैं वे उन लोगों तक दीन का इल्म पहुँचाएँ जो इस वक्त मौजूद नहीं हैं। यानी जो कुछ अल्लाह की तरफ़ से नाज़िल हुआ है यानी क़ुरआन में है और जो कुछ नबी (सल्ल.) ने बताया, सिखाया और करके दिखाया है वह सब दूसरों को बता दिया जाए।

उस आख़िरी हज के बाद नबी (सल्ल.) का इन्तिक़ाल हो गया। नबी (सल्ल.) के बाद सहाबा किराम (रज़ि.) दूर और नज़दीक के इलाक़ों में फैल गए। वे जहाँ-जहाँ पहुँचे वहाँ उन्होंने दीन की तालीम देना शुरू कर दी। उनके साथ उनकी बीवियाँ भी गईं। उन्होंने वहाँ की औरतों में दावत व तबलीग़ का काम किया। नबी (सल्ल.) की प्यारी बीवियाँ मदीना ही में रहीं। उन पाक बीवियों में हज़रत आइशा (रज़ि.) ने बड़ी बाक़ाइदगी के साथ दीन का इल्म फैलाया। औरतों में भी, मर्दों में भी। चूँकि हज़रत आइशा (रज़ि.) लम्बी मुद्दत नबी (सल्ल.) के क़रीब रही थीं, इसलिए उन्हें जो बातें मालूम हो सकती थीं वे दूसरों को नहीं मालूम हो सकती थीं। फिर जब यह बात शामिल कर ली जाए कि हज़रत आइशा (रज़ि.) को ख़ुद भी दीन का इल्म सीखने का बेहद शौक़ था, वे बहुत ज़हीन थीं और उनकी याददाश्त बहुत अच्छी थी तो ज़ाहिर है कि उनके इल्म में चार चाँद लग जाने चाहिएँ। ऐसा ही हुआ, हज़रत आइशा (रज़ि.) क़ुरआन और हदीस के इल्म में चाँद-सूरज बनकर चमकीं। बड़े-बड़े सहाबा (रज़ि.) को उनके इल्म पर भरोसा था। हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) जो पहले ख़लीफ़ा हुए और जो हज़रत आइशा (रज़ि.) के बाप थे, नबी (सल्ल.) के राज़दार थे, उनके इल्म से बढ़कर किसका इल्म हो सकता है, वे ख़ुद भी ज़्यादातर मसले हज़रत आइशा (रज़ि.) से पूछा करते थे। उनके अलावा जिन सहाबा (रज़ि.) ने हज़रत आइशा (रज़ि.) के इल्म के बारे में राय दी, उन सबकी राय इस छोटे से लेख में नहीं लिखी जा सकती। हाँ कुछ बुज़ुर्गों का बयान नक़ल

किया जा रहा है। इन बुज़ुर्गों में कुछ सहाबा (रज़ि.) हैं, कुछ सहाबा (रज़ि.) के शागिर्द और कुछ इमाम हज़रात हैं।

हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि.) फ़रमाते हैं–

"हमें, यानी नबी (सल्ल.) के सहाबा को कोई ऐसी मुश्किल बात कभी पेश नहीं आई कि जिसको हमने हज़रत आइशा (रज़ि.) से पूछा हो और उनसे हमको पूरी मालूमात न मिली हों।"

यानी हम सहाबा ने मुश्किल से मुश्किल बात जो हमारी समझ में नहीं आई, हज़रत आइशा (रज़ि.) से पूछी और उन्होंने अच्छी तरह हमें समझा दी।

हज़रत इमाम ज़ोहरी (रह.)

ये वे मशहूर बुज़ुर्ग हैं जो ताबईन के पेशवा माने जाते हैं। उन्होंने बड़े-बड़े सहाबा से तालीम हासिल की और हज़रत आइशा (रज़ि.) से भी इल्म सीखा, वे फ़रमाते हैं:

"हज़रत आइशा (रज़ि.) तमाम लोगों में सबसे बड़ी आलिमा (विद्वान स्त्री) थीं, बड़े-बड़े सहाबा (रज़ि.) उनसे पूछा करते थे।"

इमाम ज़ोहरी (रह.) ही का बयान है कि अगर तमाम मर्दों और उम्महातुल मोमिनीन का इल्म एक जगह जमा किया जाए तो हज़रत आइशा (रज़ि.) का इल्म उनमें सबसे ज़्यादा होगा।

हज़रत मसरूक़ ताबई (रह.) जो हज़रत आइशा (रज़ि.) के शागिर्द थे, कहते हैं:

"ख़ुदा की क़सम! मैंने बड़े-बड़े सहाबा (रज़ि.) को देखा है वे हज़रत आइशा (रज़ि.) से मीरास के मसले पूछा करते थे।"

हज़रत अम्र बिन ज़ुबैर हज़रत आइशा (रज़ि.) के भांजे थे। अपने ज़माने के बड़े आलिमों में से थे। फ़रमाते हैं:–

"मैंने हराम व हलाल, इल्म व शायरी और तिब्ब (चिकित्सा

विज्ञान) में उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) से बढ़कर किसी को नहीं देखा।''

हज़रत अता बिन अबी अर्रियाह (ताबई) जिन्होंने बहुत से सहाबा से इल्म हासिल किया था, फ़रमाते है:

''हज़रत आइशा (रज़ि.) क़ुरआन से मसले निकालने में सबसे बढ़कर आलिम थीं और लोगों में सबसे बढ़कर अच्छी राय रखनेवाली थीं।''

हज़रत अबू सलमा जो मशहूर सहाबी अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि.) के बेटे और बड़े मरतबे के ताबई थे उन्होंने अपने बाप के अलावा दूसरे सहाबा से भी इल्म सीखा था और वे हज़रत आइशा (रज़ि.) के भी शागिर्द थे, वे कहते हैं कि:

''मैंने नबी (सल्ल.) की सुन्नतों का जाननेवाला और अच्छी राय रखनेवाला हज़रत आइशा (रज़ि.) से बढ़कर किसी को नहीं पाया।''

फिर यही साहब कहते हैं, ''यह जाननेवाला कि क़ुरआन की आयतें किस मौक़े पर नाज़िल हुईं, अल्लाह और अल्लाह के नबी (सल्ल.) ने जो फ़र्ज़ किया, उसका जाननेवाला और क़ुरआन व हदीस से मसले मालूम करनेवाला भी हज़रत आइशा (रज़ि.) से बढ़कर किसी को न पाया।''

आख़िर में नबी (सल्ल.) की राय हज़रत आइशा (रज़ि.) के बारे में देखिए– नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया:

''अपने दीन का एक हिस्सा उस गोरी औरत (हज़रत आइशा) से हासिल करो।''

तालीम देने का ढंग

सवाल में सवाल पैदा कर देना

इसको एक मिसाल से समझिए। जैसे एक शागिर्द उस्ताद से पूछे कि, "पूरब-पश्चिम की दिशाएँ बताइए?" तो बताने का एक तरीक़ा यह है कि उस्ताद हाथ से इशारा करके कहे: इधर पूरब है और उधर पश्चिम। इसके अलावा दूसरा तरीक़ा यह है कि उस्ताद ख़ुद शागिर्द से ऐसा सवाल करदे जिस से उसके ज़ेहन में खोज पैदा हो जाए और सवाल का जवाब या तो ख़ुद से ज़ेहन में आ जाए या उसका सारा ध्यान, जवाब सुनने की तरफ़ हो जाए। यानी उस्ताद यूँ कहे कि, "क्या तुमने सुबह के वक़्त सूरज निकलते हुए नहीं देखा? उस दिशा को पूरब कहते हैं। क्या तुमने नहीं देखा कि सूरज किस तरफ़ डूबता है? उस दिशा को पश्चिम कहते हैं।"

इस तरह पहले तो शागिर्द ख़ूब समझ जाता है कि पूरब-पश्चिम की दिशाएँ क्या हैं? फिर भी कुछ कसर रह जाती है तो उस्ताद के सवाल का आख़िरी जुमला ख़ुद रहनुमाई करता है।

हज़रत आइशा (रज़ि.) भी शागिर्दों को पहले इसी तरह ध्यान दिलातीं, सवाल में सवाल पैदा कर देतीं फिर जवाब भी बता देतीं। मिसाल के तौर पर देखिए:

एक बार कुछ शागिर्दों ने अर्ज़ किया कि नबी (सल्ल.) के अख़लाक़ के बारे में कुछ बताइए? यह सवाल सुनकर हज़रत आइशा (रज़ि.) ने ख़ुद सवाल कर दिया, "क्या तुम क़ुरआन नहीं पढ़ते?" अब हर शख़्स समझ सकता है कि पूछनेवालों के ज़हनों में क़ुरआन के वे हुक्म आ गए होंगे जो अच्छे अख़लाक़ के बारे में हैं। जब इस तरह सबको क़ुरआन की तरफ़ ध्यान दिला दिया तो हज़रत आइशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, "नबी (सल्ल.) का अख़लाक़ बिल्कुल क़ुरआन के मुताबिक़ था।"

एक उस्ताद जब शागिर्द को इस तरह बताए तो इसी से एक तरफ़ नबी (सल्ल.) की सीरत उभर कर उसके सामने आ जाएगी तो दूसरी तरफ़ उसे क़ुरआन से दिलचस्पी पैदा हो जाएगी और फिर वह शागिर्द अपने आप उसी साँचे में ढलने की कोशिश करेगा। आगे चलकर आपको मालूम होगा कि हज़रत आइशा (रज़ि.) के शागिर्दों का मरतबा इल्म और अमल में क्या था।

इस तरह का दूसरा क़िस्सा सुनिए– शागिर्दों ने पूछा, "माँ यह बताइए कि रातों में नबी (सल्ल.) की इबादत का तरीक़ा क्या था?" हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जवाब दिया, "क्या तुम सूरा मुज़्ज़म्मिल नहीं पढ़ते?"

पहले तो शागिर्दों को जवाब भी बता दिया था कि नबी (सल्ल.) का अख़लाक़ बिल्कुल क़ुरआन के मुताबिक़ था। इस बार सिर्फ़ सूरा मुज़्ज़म्मिल की तरफ़ इशारा कर दिया। अब जिसका जी चाहे सूरा मुज़्ज़म्मिल पढ़ ले, अनुवाद पढ़ ले। मालूम हो जाएगा कि अल्लाह ने अपने नबी (सल्ल.) को रातों में इबादत करने के लिए क्या हुक्म दिया था।

एक बार शागिर्दों ने अर्ज़ किया, "ऐ हमारी माँ! हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.), हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) और कुछ और सहाबा इस तरह रिवायत करते हैं कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया:–

"मरनेवाले पर उसके घरवालों के रोने से अज़ाब होता है।" तो पहले हज़रत आइशा (रज़ि.) ने क़ुरआन की आयत तिलावत की, "और कोई किसी दूसरे के गुनाह का बोझ नहीं उठाता।" फिर कहा, "उसकी ज़िम्मेदारी मरनेवाले पर क्यों है?" क़ुरआन की आयत और फिर उम्मुल मोमिनीन का सवाल कर देना, तमाम शागिर्दों के लिए दिलचस्प विषय बन गया। फिर एक और बड़ी बात यह कि रावियों में बड़े ऊँचे मरतबे के सहाबी थे। अब बात साफ़ कैसे हो? शागिर्दों का ज़ेहन यह सब सुनने के लिए तैयार हो गया तो फ़रमाया:

असल क़िस्सा यूँ है कि एक बार नबी (सल्ल.) जा रहे थे, रास्ते में एक यहूदी औरत का जनाज़ा मिला। मुर्दा औरत के रिश्तेदार उसकी मुहब्बत में रो-पीट रहे थे। नबी (सल्ल.) ने यह सब देखकर कहा, "ये रोते हैं और उस पर (मुर्दा औरत पर) अज़ाब हो रहा है।" फिर कहा, "हर शख़्स अपने किए का

ज़िम्मेदार है।'' शागिर्दों की समझ में पूरी बात आ गई कि औरत पर अज़ाब उसके शिर्क की वजह से हो रहा था न कि उसके घरवालों के रोने की वजह से।

इससे भी ज़्यादा दिलचस्प क़िस्सा सुनिए। एक बार कुछ शागिर्दों ने अर्ज़ किया, ''उम्मुल मोमिनीन! हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) यह रिवायत करते हैं कि मर्द के सामने से औरत या गधा या कुत्ता निकल जाए तो मर्द की नमाज़ टूट जाती है।'' यह सुनकर हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जवाब दिया कि, ''अबू हुरैरा ने तो हम औरतों को गधे और कुत्ते के बराबर कर दिया।'' इसके बाद शागिर्दों को बताया:–

''नबी (सल्ल.) (मेरे कमरे में) नमाज़ें पढ़ा करते थे (कमरा छोटा था) मैं सोती होती थी। जब नबी (सल्ल.) सजदे में जाते तो हाथ मारते, मैं पाँव समेट लेती। कभी-कभी ऐसा भी होता कि मैं सिमट कर सामने से निकल जाती।''

हज़रत आइशा (रज़ि.) का यह वह तालीम का तरीक़ा है जो उन्होंने क़ुरआन से सीखा और नबी (सल्ल.) से भी।

नबी (सल्ल.) के क़िस्सों में एक दिलचस्प क़िस्सा सुनिए, एक बार एक व्यक्ति ऊँट पर सवार होकर आया। मस्जिदे-नबवी के सामने ऊँट से उतरा। ऊँट को यूँ ही छोड़ दिया। नबी (सल्ल.) के पास आया और पूछा : ''ऐ अल्लाह के रसूल! तवक्कुल किसे कहते हैं?'' नबी (सल्ल.) ने कहा, ''पहले जाकर ऊँट को किसी चीज़ से बांध दो, फिर आकर पूछो।'' कितना दिलचस्प इशारा है, इस इशारे के अन्दर जवाब मौजूद है। यानी पहले अल्लाह तआला की तरफ़ से दी हुई सूझ-बूझ और तदबीर से काम लो फिर अल्लाह पर भरोसा करो। हज़रत आइशा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) का यह तालीम का तरीक़ा देखती थीं और दिल पर लिख लेती थीं फिर ख़ुद आपने यही तालीम का तरीक़ा अपना लिया।

बात की तह तक पहुँचना और लोगों को बताना

यह समझना कि असल बात क्या है, हज़रत आइशा (रज़ि.) अपने शागिर्द को पूरी तरह बात समझाने के लिए बात का मौक़ा व स्थिति बताती थीं। यह बताती थीं कि क़ुरआन की फ़लाँ आयत किस मौक़े पर कहाँ नाज़िल हुई या नबी (सल्ल.) ने फ़लाँ बात फ़लाँ मौक़े पर फ़लाँ जगह बताई। यह बताने के बाद यह

भी हुक्म देती थीं कि फ़लाँ जगह नबी (सल्ल.) के पास फ़लाँ-फ़लाँ सहाबा नज़दीक खड़े या बैठे थे, उनके पास जाओ और उन्हीं से पूछो। उसके बाद बात का उद्देश्य बतातीं। हज़रत आइशा (रज़ि.) की ज़िन्दगी के हालात जो पिछले पन्नों में लिखे गए, उनमें आपने पढ़ा है कि तालीम का तरीक़ा ख़ुद हज़रत आइशा (रज़ि.) ने नबी (सल्ल.) से सीखा। उसपर ख़ुद अमल करतीं और शागिर्दों से अमल करातीं। अब हर एक की एक-एक, दो-दो मिसालें सुनिए:

हज़रत आइशा (रज़ि.) फ़रमाती हैं कि जब क़ुरआन की सूरा बक़रा और सूरा निसा नाज़िल हुई तो मैं नबी (सल्ल.) के पास थी (यानी मेरी शादी हो चुकी थी मैं नबी (सल्ल.) के पास आकर रहने लगी थी)।

सूरा निसा में है–

"अगर किसी औरत को अपने शौहर की तरफ़ से यह अन्देशा हो कि वह ख़फ़ा हो जाएगा और मुँह मोड़ लेगा, तो इसमें कुछ हरज नहीं कि दोनों आपस में सुलह कर लें और सुलह तो हर हाल में बेहतर है।"

(क़ुरआन, 4:128)

इस आयत के बारे में उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) फ़रमाती हैं कि यह आयत उस औरत के बारे में है जिसका शौहर उसके पास कम आता जाता हो या बीवी बूढ़ी हो चुकी हो और शौहर की ख़िदमत करने के क़ाबिल न रही हो। ऐसी हालत में अगर बीवी तलाक़ लेना पसन्द न करे और बीवी बनी रहकर शौहर से सुलह करले तो यह अच्छी बात है।

इसी तरह जब सूरा अहज़ाब की आयत 20, नाज़िल हुई यानी यह कि:

"जब वे तुम्हारे सामने से आए और तुम्हारे पीछे से आए और जब निगाहों के सामने धुँध छा गई और जब कलेजे मुँह को आ गए।"

(क़ुरआन, 33:20)

हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि यह ख़न्दक़ की लड़ाई का दृश्य है। उस वक़्त सारा अरब मुसलमानों पर (मदीना में) चढ़ आया था और मुसलमान बेहद परेशान और घबराए हुए थे।

शागिर्दों ने एक बार अर्ज़ किया कि हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) यह रिवायत

करते हैं कि तीन चीज़ों में मनहूसियत है। अव्वल औरत में, दूसरे घोड़े में तीसरे घर में। इसके बारे में हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जवाब दिया कि नबी (सल्ल.) मस्जिद नबवी में तक़रीर फ़रमा रहे थे। अबू हुरैरा ज़रा देर में पहुँचे थे। वे नबी (सल्ल.) की बात का आख़िरी हिस्सा सुन सके। पूरी बात यूँ है कि नबी (सल्ल.) ने यूँ फ़रमाया, ''यहूद कहते हैं कि मनहूसियत तीन चीज़ों में है। औरत में, घोड़े में और घर में।''

एक सहाबिया थीं, उनका नाम फ़ातिमा था। उन्हें उनके शौहर ने तलाक़ दे दी थी। उनको नबी (सल्ल.) ने इजाज़त दे दी थी कि शौहर के घर से दूसरे घर में चली जाएँ। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) अपना यह क़िस्सा बयान करके इजाज़त को हुक्म समझ बैठीं और एक मौक़े पर यह फ़तवा भी दे दिया। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने सुना तो फ़रमाया कि फ़ातिमा (रज़ि.) को इसलिए शौहर के घर से दूसरे घर में चले जाने की इजाज़त दी थी कि उनके शौहर का घर महफ़ूज़ न था और ख़ौफ़नाक जगह पर था (वरना सही यह है कि तलाक़ पाई हुई औरत शौहर ही के घर इद्दत गुज़ारे)।

एक मशहूर हदीस है कि नबी (सल्ल.) को बकरी के दस्त का गोश्त पसन्द था। हज़रत आइशा (रज़ि.) उसकी वजह बयान करती हैं कि नबी (सल्ल.) को दस्त का गोश्त इसलिए पसन्द था कि वह जल्द गल जाता है।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के एक-एक तरीक़े पर अमल करते थे। उनके ख़याल से नबी (सल्ल.) ने जो कुछ किया और किसी भी मक़सद से किया, वह भी सुन्नत है। इसी बुनियाद पर हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) हज से वापसी पर 'अबतह' के मक़ाम पर ठहरते थे। 'अबतह' एक जगह का नाम है। हज से वापस होते वक़्त नबी (सल्ल.) वहाँ ठहरते थे। हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि 'अबतह' में ठहरना सुन्नत नहीं है। वहाँ तो नबी (सल्ल.) इस लिए रुक गए थे कि वहाँ से निकलना नबी (सल्ल.) के लिए आसान था।

हज में सफ़ा-मरवा (काबा के पास की दो पहाड़ियाँ) के बीच-दौड़ना भी होता है। उन पहाड़ियों को क़ुरआन ने ''शआइरिल्लाह'' कहा है। अल्फ़ाज़ ये हैं:—

"सफ़ा और मरवा की पहाड़ियाँ शआइरिल्लाह में से हैं। तो जो काबा का हज करे या उमरा करे, कुछ हरज नहीं अगर इनका भी तवाफ़ करे।"

हज़रत आइशा (रज़ि.) के भांजों में हज़रत उरवा बिन ज़ुबैर भी थे और बहुत ज़हीन शागिर्द भी, "कुछ हरज नहीं, अगर उनका भी तवाफ़ करे" पर अर्ज़ किया, "ख़ाला जान! इसके तो यह भी मानी हो सकते हैं कि अगर कोई तवाफ़ न करे तो भी कुछ हरज नहीं।" भांजे के एतिराज़ पर हज़रत आइशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, "अगर आयत का यह मतलब होता जैसा कि तुम कह रहे हो तो अल्लाह तआला यूँ फ़रमाता, अगर उनका तवाफ़ न करो तो कोई हरज नहीं।" उसके बाद आयत नाज़िल होने की वजह बताई कि असल में यह आयत अंसार को समझाने के लिए नाज़िल हुई थी। अंसार सफ़ा और मरवा का तवाफ़ बुरा समझते थे क्योंकि वे मुसलमान होने से पहले मनात नामी बुत की जय पुकारते थे। उन्होंने अपने बारे में पूछा कि अब हम क्या करें? मनात को तो हमने छोड़ दिया। उसपर यह आयत उतरी कि सफ़ा और मरवा का तवाफ़ करने में कोई हरज नहीं है। उसके बाद हज़रत आइशा (रज़ि.) ने बताया कि नबी (सल्ल.) ने उन दोनों पहाड़ियों के बीच सई (दौड़ लगाना) फ़रमाई है तो अब क्या शक रह जाता है।

यह सुनकर हज़रत उरवा और उनके साथ दूसरे शागिर्द मुत्मइन हो गए। फिर जब हज़रत आइशा (रज़ि.) की यह तशरीह मशहूर मुहद्दिस अबू बक्र बिन अब्दुर्रहमान को पहुँची तो वे फड़क उठे, और तुरन्त बोले उठे, "इल्म इसे कहते हैं।"

इस्लाह के नमूने

जब नबी (सल्ल.) ने "ईला' लिया था, यानी एक माह के लिए पाक बीवियों से अलग होकर मकान के ऊपरी भाग में रहने लगे थे फिर 29 तारीख़ को वहाँ से उतर आए तो हज़रत आइशा (रज़ि.) ने कहा कि, "ऐ अल्लाह के रसूल! आज तो 29 तारीख है।" नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "क्या महीना 29 का नहीं होता?"

यह रिवायत यूँ चल पड़ी कि महीना 29 दिन का होता है। शागिर्दों ने हज़रत

आइशा (रज़ि.) के सामने उसे दोहराया तो हज़रत आइशा (रज़ि.) ने इस तरह इस्लाह (संशोधन) की, "यूँ नहीं बल्कि यूँ कहो कि कभी महीना 29 दिन का भी होता है।"

बहुत मशहूर आयत है जिसमें अल्लाह तआला ने मुसलमानों को चार बीवियाँ तक रखने की इजाज़त दी है। यह इजाज़त इस तरह है :

> "अगर तुम को यह अंदेशा हो कि यतीमों के बारे में इंसाफ़ न कर सकोगे तो औरतों में से दो-दो, तीन-तीन, चार-चार से निकाह कर लो।" (क़ुरआन, 4:3)

शागिर्दों ने इस आयत के समझने में अपनी एक मुश्किल पेश की, और पूछा, "उम्मुल मोमिनीन! इस आयत में ज़िक्र यतीमों से इंसाफ़ करने और न करने का है। दो-दो, तीन-तीन, चार-चार औरतों से निकाह करने से क्या ताल्लुक़ है। उन दोनों में क्या सम्बन्ध है?" हज़रत आइशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, "आयत के नाज़िल होने की वजह यह है कि वे लोग जो यतीमों के रिश्तेदार होते थे, अपने रिश्ते के बल पर यतीमों के सरपरस्त बन जाते थे फिर यतीम लड़कियों के साथ इसलिए निकाह कर लेते थे ताकि उनकी जायदाद पर क़ब्ज़ा कर लें। उन ग़रीब यतीमों की तरफ़ से कोई बोलनेवाला नहीं होता था इसलिए अल्लाह तआला ने मर्दों को इस तरह मुख़ातिब किया कि अगर तुम को यह डर हो कि उन यतीमों से इंसाफ़ न कर सको तो निकाह करने के लिए तुम को दूसरी तरफ़ यह और यह इजाज़त है।"

जुमा के दिन ग़ुस्ल करने के बारे में अलग-अलग सहाबा (रज़ि.) से इस तरह की रिवायते हैं:

> "मैंने नबी (सल्ल.) को कहते सुना कि जो जुमा में आए, ग़ुस्ल करके आए।" (अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ि.)

> "नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया कि जुमा का ग़ुस्ल हर बालिग़ पर फ़र्ज़ है।" (अबू सईद ख़ुदरी रज़ि.)

यही बात हज़रत आइशा (रज़ि.) इस तरह रिवायत करती हैं कि "लोग दूर-दूर से आते थे। गर्द और ग़ुबार और पसीने से तर होते थे। एक बार एक साहब इस हालत में आए और नबी (सल्ल.) के पास बैठ गए। नबी (सल्ल.) ने

उनसे कहा, "अच्छा होता अगर तुम इस दिन ग़ुस्ल करते।" हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जुमा के दिन नहाने की वजह भी बता दी।

एक बार नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "क़ुरबानी का गोश्त तीन दिन के अन्दर खा लिया जाया करे।" कुछ सहाबा इस तरह रिवायत करते थे लेकिन हज़रत आइशा (रज़ि.) के रिवायत करने का अन्दाज़ देखिए, वे कहती हैं कि, "उन दिनों में क़ुरबानी करनेवाले कम थे। नबी (सल्ल.) का आशय यह था कि जो क़ुरबानी नहीं कर सकते उन तक भी गोश्त पहुँचे।" (यानी ये हुक्म बिल्कुल न था बल्कि नबी (सल्ल.) चाहते थे कि लोग दूसरों को भी खिलाया करें)।

एक बहुत ही अहम इस्लाह देखिए, सूरा निसा की पहली आयत में दो बातें हैं :

(1) जो लोग ज़ुल्म करके यतीमों का माल खाते हैं वे अपने पेट में आग खाते हैं।

(2) और जो मालदार हो उसको इससे बचना चाहिए और जो ग़रीब हो वे नियम के मुताबिक़ ले।

कुछ लोगों को सन्देह पैदा हुआ कि पहली बात ने दूसरी बात को रद्द कर दिया है यानी अल्लाह तआला ने क़तई हुक्म दे दिया है कि यतीम का माल न खाया जाए। शागिर्दों ने अपनी यह परेशानी उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) के सामने बयान की। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, "इनमें से रद्द एक भी नहीं। असूल में मतलब यह है कि जो लोग यतीमों की जायदाद की देख-भाल करते हैं और उनका कारोबार सँभाल लेते हैं, अगर ये लोग ख़ुशहाल और आत्मनिर्भर हैं, मालदार हैं तो उनको अपनी ख़िदमत के बदले यतीमों के माल से कुछ नहीं लेना चाहिए और अगर वे ग़रीब हैं तो ज़रूरत के मुताबिक़ खुल्लम खुल्ला लें यानी लोगों को मालूम हो जाए कि वे कितनी रक़म लेते हैं। कहीं ऐसा तो नहीं ज़्यादा ले लें और यह ज़ुल्म होगा। मालदार आदमी अगर कुछ भी ले तो वह ज़ुल्म है ही।

इस्लाह का एक नमूना और देखिए, हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) ने रिवायत की कि एक औरत ने एक बिल्ली पाल रखी थी लेकिन वह उसे खाने को नहीं देती थी, बिल्ली इसी हालत में मर गई तो उस औरत पर अज़ाब हुआ।

हज़रत आइशा (रज़ि.) ने पूछा कि तुमने नबी (सल्ल.) से ऐसे ही सुना है? बोले, "जी हाँ।" हज़रत आइशा (रज़ि.) ने कहा, "अबू हुरैरा (रज़ि.)! जब रिवायत किया करो तो बात को अच्छी तरह समझ कर नबी (सल्ल.) से जोड़ो। वह औरत ग़ैर-मुस्लिम भी थी। उस पर अज़ाब उसके कुफ़्र की वजह से हुआ (वरना छोटे-छोटे गुनाह अल्लाह माफ़ कर देता है)।"

इस्लाह का एक और नमूना – एक सहाबी (रज़ि.) ने एक दिन अपनी तक़रीर में कहा कि अगर रोज़े के दिन किसी को सुबह नहाने की ज़रूरत पड़ जाए तो उस दिन वह रोज़ा न रखे। यह मसला सुनकर लोग परेशान हुए। अब किससे पूछें। रिवायत करनेवाले एक सहाबी थे, मसला नाज़ुक था। लोगों ने पाक बीवियों (रज़ि.) की तरफ़ रुख़ किया। कुछ लोग हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास गए, कुछ हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि.) के पास और कहा कि क्या यह सच है? जवाब मिला कि नबी (सल्ल.) का अमल इससे ख़िलाफ़ रहा। अब लोगों ने जाकर सहाबी (रज़ि.) से कहा और उन्होंने उम्मुल मोमिनीन की बात मान ली और अपना क़ौल वापस ले लिया।

इस जगह यह भी बता देना ज़रूरी मालूम होता है कि हज़रत आइशा (रज़ि.) की खिदमत में नाबालिग़, बालिग़ और बड़ी उम्र के लोग इल्म हासिल करने की ग़रज़ से जाया करते थे। बड़ी उम्र के लोग कुछ वे बातें जो औरतों के बारे में होती थीं, पूछने में हिचकिचाते थे। वे नाबालिग़ बच्चों को पूछने का ज़रीया बनाते थे लेकिन पूरी बात खुलकर न आती। आइशा (रज़ि.) ने उनसे फ़रमाया, "मैं तो तुम्हारी माँ हूँ, मुझसे पूछने में मत झिझको।" फिर समझातीं, "अल्लाह तआला हम सबसे ज़्यादा ग़ैरतवाला है। उसने इस तरह की छिपी बातें ज़ाहिर कर दीं, तो तुम दीन की बात जानने के लिए खुलकर कहो।"

ये इजाज़त पाकर बड़े-बड़े नाज़ुक मसले हल हो गए। वे छिपी हुई बातें जो मियाँ-बीवी के बीच होती हैं उनके बारे में क्या हुक्म है, यह सब हज़रत आइशा (रज़ि.) से और दूसरी उम्महातुल मोमिनीन (रज़ि.) से उम्मत को मालूम हुआ।

इस जगह वे बातें भी साफ़ करते हुए चलना दिलचस्पी से ख़ाली न होगा जो मिसालों और इशारों की सहायता से कही जाती हैं। अल्लाह तआला ने भी मिसालों और इशारों की ज़बान इस्तेमाल की है। मिसाल के तौर पर यह कि जब सफ़ेद धागा, काले धागे से निकल जाए तो सुबह सादिक़ का वक़्त होता है, उस

वक़्त सहरी खाने का वक्त ख़त्म हो जाता है। यह बात सूरा बक़रा में है।

कुछ लोग सुबह सवेरे काले धागे पर सफ़ेद धागा रख कर देखते थे, जब सफ़ेद धागा चमक जाता तो समझ जाते कि सुबह सादिक़ हो गई। हालाँकि सही बात यह है कि सफ़ेद धागे से मतलब वह रौशनी है जो सुबह सादिक़ के वक़्त ज़ाहिर होकर रात की कालिमा पर छा जाने का सुबूत देती है।

हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि.) का आख़िरी वक़्त आया तो उन्होंने अपनी पसन्द के कपड़े मँगवाए और पहने। फिर फ़रमाया कि "मुसलमान जिस लिबास में मरता है उसी लिबास में उठाया जाता है।"

यह बात हज़रत अबू सईद (रज़ि.) ने नबी (सल्ल.) से सुनी थी। नबी (सल्ल.) ने बेशक इन्हीं शब्दों में फ़रमाया था, लेकिन असूल में नबी (सल्ल.) ने वही मिसालों और इशारे की ज़बान इस्तेमाल की थी। उस को हज़रत अबू सईद (रज़ि.) नहीं समझ सके। जब हज़रत आइशा (रज़ि.) से लोगों ने अर्ज़ किया कि उन्होंने इन्तिक़ाल के वक़्त यह कहा और नए कपड़े पहने तो उम्मुल मोमिनीन ने समझाया कि नबी (सल्ल.) ने इंसान के अमल को लिबास कहा है। यानी जो जैसे अमल लेकर मरेगा वही लेकर क़ियामत के दिन उठेगा। वरना क़ुरआन और हदीस से यह साबित है कि लोग क़ियामत में नंगे उठेंगे।

सीखने वाले लोग और सिखाने की जगह

पिछले पृष्ठों से यह मालूम हो चुका कि जिस कमरे में हज़रत आइशा (रज़ि.) रहती थीं उसका दरवाज़ा मस्जिदे-नबवी के सहन में खुलता था। उसी कमरे में बैठकर उम्मुल मोमिनीन दर्स दिया करती थीं। शागिर्द कुछ कमरे के अन्दर और कुछ मस्जिदे-नबवी के सहन में बैठते। दरवाज़े पर परदा पड़ा रहता था। उम्मुल मोमिनीन परदे की आड़ लेकर बैठ जातीं और फिर तालीम शुरू हो जाती थी।

शागिर्दों में दो तरह के शागिर्द थे। एक वे जिनका उम्मुल मोमिनीन से परदा न था, दूसरे वे जिनसे परदा था। शागिर्दों में लड़कियाँ और औरतों भी होतीं जो परदे के अन्दर उम्मुल मोमिनीन से क़रीब बैठतीं।

शागिर्दों में जो लोग नामहरम थे यानी जिनसे हज़रत आइशा (रज़ि.) का परदा था और वे मस्जिदे-नबवी के सहन में बैठकर परदे की आड़ से तालीम हासिल करते थे, वे अफ़सोस किया करते थे कि उन्हें उम्मुल मोमिनीन के काम करने का ढँग देखने का मौक़ा नहीं मिलता। ऐसे शागिर्द समझते थे कि बहुत-सी बातें और शब्द सुनने के साथ अगर चेहरे और निगाहों के भावों को भी देख लें तो सबक़ का मतलब अच्छी तरह ज़ेहन में बैठ जाए। इमाम नख़ई (रह.) बहुत बड़े इमाम गुज़रे हैं। वे हज़रत आइशा (रज़ि.) के शागिर्द थे और उन्हें कमरे में बैठने का सौभाग्य प्राप्त था। उनके साथ के सारे शागिर्द कहते हैं कि इमाम नख़ई (रह.) हमसे इसलिए तालीम में बढ़ गए कि वे उम्मुल मोमिनीन (रज़ि.) के कमरे में बैठकर तालीम हासिल करते थे। इस तरह इमाम क़बीसा (रह.) से लोगों ने पूछा कि उरवा आप से इल्म में किस तरह आगे बढ़ गए। इमाम क़बीसा (रह.) ने जवाब दिया, इस वजह से कि उरवा उम्मुल मोमिनीन (रज़ि.) के भांजे थे। वे कमरे में बैठते थे। मैं नामहरम था और-मस्जिद के सहन में बैठता था। इस तरह की और बहुत-सी मिसाले हैं।

दर्स शुरू होता, उम्मुल मोमिनीन हदीसें सुनातीं और चुप हो जातीं। अगर शागिर्द सवाल करते तो जवाब देतीं, अगर सवाल न करते तो ख़ुद ऐसा तरीक़ा अपनातीं कि शागिर्द सवाल करने लगते। अगर कोई सवाल करते वक़्त झिझकता तो उसकी हिम्मत बढ़ातीं। आम तौर पर बड़ी उम्र के शागिर्द ज़्यादा सवाल करते और सवाल करने में झिझकते भी। उनसे उम्मुल मोमिनीन कहतीं, "मैं तो तुम्हारी माँ हूँ, मुझ से हर मसला पूछ सकते हो।" फिर भी कुछ औरतों के ऐसे ख़ास मसले आ पड़ते कि नामहरम और बड़ी उम्र के शागिर्द बहस करते-करते रुक जाते। ऐसे मौक़े पर उम्मुल मोमिनीन कमरे में बैठी हुई औरतों और लड़कियों को मुख़ातिब करतीं और बहसवाले मसलों पर हदीसें सुनातीं और उनकी स्थिति व अवसर और मतलब समझातीं।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) हज़रत आइशा (रज़ि.) के बहुत ही अज़ीज़ भांजे थे। वे ज़्यादातर बड़ों के साथ बैठते थे। ख़ालाजान से बहुत डरते थे। वे हज़रत आइशा (रज़ि.) के एक नई उम्र के ख़ास शागिर्द अस्वद से कहते, "ख़ालाजान तुम से बहुत-सी ऐसी बातें कहतीं हैं जो दूसरों को नहीं बतातीं, तो वे बातें तुम मुझे बता दिया करो।"

बड़ी उम्र के बहुत-से नामहरम शागिर्दों ने कम उम्र बच्चियों को (जिनका परदा नहीं हुआ था) ज़रिया बनाया था। वे उन बच्चियों को सवाल समझा देते। वे बच्चियाँ जाकर हज़रत आइशा (रज़ि.) से सवाल करतीं और दर्स का सिलसिला शुरू हो जाता।

दर्स देते वक़्त छोटे-छोटे वाक्य बोलतीं, जल्दी न करतीं। जो कुछ कहना होता क़ुरआन की तरह आसान ज़बान और मुख़्तसर और छोटे वाक्यों में बयान करतीं। इतनी आसानी देतीं कि जो लिखना चाहे वह लिख ले।

दर्स देते वक़्त सही ज़बान का बड़ा ख़याल रखतीं। कोई शागिर्द अगर ग़लत वाक्य बोलता तो टोकतीं और इस्लाह करतीं। जो बच्चे उनके घर के पले थे या जिनको हज़रत आइशा (रज़ि.) की ख़िदमत का ज़्यादा मौक़ा मिला था वही ज़्यादातर आगे चलकर बड़े-बड़े इमाम हुए। एक क़िस्सा सुनिए:

क़ासिम और इब्ने अबी अतीक़ हज़रत आइशा (रज़ि.) के दो भतीजे थे। इब्ने अबी अतीक़ क़ुरैशी माँ से थे और क़ासिम कनीज़ से। क़ुरैशी माँ की ज़बान की नक़ल इब्ने अबी अतीक़ ने की थी और वे बहुत अच्छी अरबी बोलते थे। क़ासिम उतनी अच्छी अरबी नहीं बोल सकते थे। हज़रत आइशा (रज़ि.) क़ासिम को बढ़ावा देतीं, "तुम भी इब्ने अबी अतीक़ की तरह बोला करो।" फिर इस बढ़ावे का असर हुआ कि क़ासिम अपने ज़माने के इमामों में सूरज बन कर चमके। ये वही क़ासिम हैं जिनका नाम यूँ लिया जाता है कि क़ासिम बिन मुहम्मद बिन अबू बक्र। और जिनके बारे में हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह.) कहा करते थे कि, "ऐ मेरे ख़ानदान के लोगो! अगर तुम मुझे परेशान करोगे तो मैं मदीना चला जाऊँगा और वहाँ एक ऐसे शख़्स को ख़िलाफ़त सौंप दूँगा जो उसके लायक़ है।" यह इशारा क़ासिम की तरफ़ था।

उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) शागिर्दों को नसीहत किया करती थीं कि, "तक़रीर हर रोज़ न किया करो, दो-चार दिन छोड़कर तक़रीर किया करो। तक़रीर मुख़्तसर किया करो ताकि लोग उकताएँ नहीं। दुआ माँगो तो फ़ौरन माँगो, दुआ माँगने में जो ज़बान इस्तेमाल करो उसमें बनावट न हो। इस सिलसिले में एक शागिर्द को बड़ी सख़्ती से रोका, यह शागिर्द थे इब्ने अबी सायब, बहुत उम्दा वाज़ कहते थे और रोज़ाना वाज़ कहा करते थे। दुआ माँगते

तो अल्फ़ाज़ बना-बना कर बोलते। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने उनसे फ़रमाया :

"मैं तुमको तीन नसीहतें करती हूँ। अगर तुम न मानोगे तो मैं ज़बरदस्ती मनवाऊँगी।" इब्ने अबी सायब घबरा गए, बोले, "उम्मुल मोमिनीन फ़रमाएँ!" हज़रत आइशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, "पहली बात यह कि दुआ में बनावटी और ग़ैर फ़ितरी जुमले न बोला करो। नबी (सल्ल.) और सहाबा का यही तरीक़ा था। दूसरी बात यह कि हफ़्ते में एक बार तक़रीर किया करो, जब लोग तुम्हारी तक़रीर के ख़ाहिशमन्द हों और वे कहें तो तक़रीर करो। इस तरह तक़रीर असरदार होगी और ख़ूब असर करेगी। तीसरी बात यह कि तक़रीर छोटी हो लम्बी न करो। ऐसा न करो कि जहाँ लोग बैठे मिल जाएँ वहीं तक़रीर शुरू कर दो। इस तरह लोग उकता जाएँगे।"

अपने कमरे के अलावा अगर कहीं और तालीम का सिलसिला जारी रहता तो वह ज़माना और मक़ाम था, हज और अरफ़ात का, मुज़दलफ़ा और मिना का। हज़रत आइशा (रज़ि.) हर साल हज को जाती थीं। हज के ज़माने में चारों तरफ़ से लोग हज करने आते, मर्द भी, औरतें भी। उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) का ख़ेमा लगता और इल्म के शौक़ीन ख़ेमे को घेर लेते। लोग अपने-अपने मसले पेश करते। हज़रत आइशा (रज़ि.) समझातीं, वक़्त और मक़ाम के एतबार से मसले को हल करने का तरीक़ा बतातीं। किसी बात में सन्देह होता तो मसला खोलकर समझातीं। अगर लोगों की भीड़ दूर तक हो जाती तो नई उम्र के लड़कों को जगह-जगह खड़ा कर देतीं। वे ज़हीन लड़के आप (रज़ि.) का दर्स दोहराते और हज़ारों मुसलमान फ़ायदा उठाकर हज से वापस होते।

फिर जब उम्मुल मोमिनीन चलतीं तो औरतें आस-पास होतीं। वे अपने मसले पेश करतीं, हज़रत आइशा (रज़ि.) उनको हदीस और क़ुरआन पढ़कर सुनातीं फिर अपना अमल बतातीं जो नबी (सल्ल.)से सीखा था।

हज में दूसरी उम्महातुल मोमिनीन भी जाती थीं। कभी कोई ख़ास मसला आ जाता तो हज़रत आइशा (रज़ि.), हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि.) के पास भेज दिया करतीं या दूसरी उम्महातुल मोमिनीन के पास।

मशहूर शागिर्द

उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) के शागिर्दों की तादाद हज़ारों तक पहुँचती है। उनमें मर्द भी हैं, औरते भीं, उनके रिश्तेदार और ग़ुलाम भी और दूसरे लोग भी। बहुत से सहाबा (रज़ि.) ने भी हज़रत आइशा (रज़ि.) से सीख कर अपने इल्म को बढ़ाया है और सहाबा (रज़ि.) के शागिर्दों ने भी बाक़ायदा तालीम हासिल की है। ज़ाहिर है कि इन सबका हाल इस छोटी-सी किताब में नहीं लिखा जा सकता, हाँ आगे चलकर जो अपने ज़माने के इमाम हुए, उनमें से कुछ ही का हाल पेश किया जा सकता है वह भी मुख़्तसर। सहाबा (रज़ि.) में से जिन बुज़ुर्गों ने हज़रत आइशा (रज़ि.) से इल्म और फ़ायदा हासिल किया, पहले उनके नाम देखिए :

हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि.), हज़रत अम्र बिन आस (रज़ि.) हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.), हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.), हज़रत रबीआ बिन अम्र जरशी (रज़ि.), हज़रत ज़ैद बिन ख़ालिद जुहनी (रज़ि.), हज़रत हारिस बिन अब्दुल्लाह (रज़ि.), हज़रत सायब बिन यज़ीद (रज़ि.)।

ग़ुलामों में हज़रत अबू यूनुस, हज़रत ज़कान, हज़रत अबू अम्र, हज़रत इब्ने फ़रह, हज़रत अबू मदला, हज़रत अबू लबाबा, हज़रत अबू यह्या, हज़रत अबू यूसुफ़ और हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ैद।

घर और रिश्ते के लड़के और लड़कियाँ जो हज़रत आइशा (रज़ि.) से इल्म हासिल करके मशहूर हैं, उनके नाम ये हैं:

हज़रत उम्मे कुलसूम बिन्त अबी बक्र (बहन), हज़रत औफ़ बिन हारिस (दूध शरीक भाई), हज़रत क़ासिम बिन मुहम्मद, हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुहम्मद (दोनों भतीजे), हज़रत हफ़्सा और हज़रत असमा (भतीजियाँ यानी अब्दुर्रहमान की बेटियाँ), हज़रत अब्दुर्रहमान बिन अबी बक्र (भाई के पोते) अब्दुल्लाह बिन अतीक़ (रज़ि.), अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) और उरवा बिन ज़ुबैर (भांजे), हज़रत आइशा बिन्ते तलहा (भांजी), हज़रत इमाद बिन हबीब और हज़रत इमाद बिन हमज़ा (भांजे के पोते) वग़ैरह।

कुछ शागिर्दों का संक्षिप्त परिचय

हज़रत उरवा– नबी (सल्ल.) के मशहूर सहाबी हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.) के आलिम व फ़ाज़िल बेटे। माँ का नाम है हज़रत असमा बिन्त अबी बक्र (रज़ि.)। हज़रत उरवा, ख़ाला (हज़रत आइशा रज़ि.) के बहुत ही प्यारे थे। बचपन ही से हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास आ गए थे। ख़ाला की गोद में पले थे। हज़रत आइशा (रज़ि.) के वे शागिर्द जिनको फ़तवा देने का हक़ हासिल था, उनमें हज़रत उरवा का स्थान सबसे ऊँचा है। इमाम ज़ोहरी (रह.) बहुत मशहूर इमाम गुज़रे हैं, वे हज़रत उरवा के शागिर्द थे।

मशहूर वाक़िआ है। ज़हर फैलने से टाँग कटने की नौबत आई तो जर्राह के सामने बैठ गए। उसने बेहोशी की दवा देनी चाही तो मना कर दिया। अब जर्राह ने अपना काम शुरू किया। हज़रत उरवा क़ुरआन की तिलावत में मशग़ूल हो गए, टाँग काटी गई, उफ़ तक न की।

हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जो हदीसें बयान कीं, उनको उरवा ने बयान किया वे हदीसें बहुत मुस्तनद (प्रामाणिक) मानी जाती हैं।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) – ये भी हज़रत आइशा (रज़ि.) की बड़ी बहन हज़रत असमा (रज़ि.) के बेटे थे। अपनी बहादुरी और साहस में बहुत मशहूर हुए। उनके बारे में कहा जाता है कि अगर दर्स और तालीम का सिलसिला शुरू करते तो सब से आगे बढ़ जाते। यज़ीद के मुक़ाबले में उसी के टक्कर की हुकूमत क़ायम की। हज्जाज बिन यूसुफ़ की ज़बरदस्त फ़ौज से टकराव रहा और उसी जंग में काम आए।

हज़रत क़ासिम – हज़रत क़ासिम (रह.) हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के पोते थे। इस रिश्ते से वे हज़रत आइशा (रज़ि.) के भतीजे थे। बचपन ही से फूफी के पास आ गए और पूरी तालीम हासिल की। बड़े हुए तो मदीना के इमाम माने गए। मसलों और फ़िक़्ह में आला दर्जे की सूझ-बूझ रखते थे और हदीस बयान करने में बड़ी सावधानी से काम लेते थे। हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज (रह.) इनको बहुत मानते थे।

हज़रत अबू सलमा – मशहूर सहाबी अब्दुर्रहमान बिन औफ़ जो उन दस

लोगों में से थे जिन्हें जन्नत की ख़ुशख़बरी दी गई। हज़रत अबू सलमा उन्हीं के बेटे हैं। ये अभी बच्चे ही थे कि बाप का इन्तिक़ाल हो गया। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने पाला और तालीम व तरबियत दी। उरवा के साथ रहे। बड़े होकर बड़े-बड़े इमामों के उस्ताद बने।

हज़रत मसरूक़ (रज़ि.) – कूफ़ा के रहनेवाले थे। बचपन ही में हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास आ गए थे। हज़रत आइशा (रज़ि.) इन्हें बेटे की तरह चाहती थीं। मसरूक़ (रह.) बहुत ज़हीन थे। उनको फ़ख़्र था कि उम्मुल मोमिनीन ने उनको बेटा कहकर पुकारा। इसका वाक़िआ यूँ है :

एक बार हज़रत आइशा (रज़ि.) ने शरबत बनवाया और कहा, "मेरे बेटे के लिए शरबत लाओ।" तालीम से फ़ारिग़ हुए तो कूफ़ा के क़ाज़ी बनाए गए। सारे इराक़ में उनके जैसा दूसरा न था। बड़े इबादत करनेवाले और परहेज़गार बुज़ुर्ग हुए हैं। क़ाज़ी होने पर तनख़ाह (वेतन) नहीं लेते थे। हज़रत आइशा (रज़ि.) से बहुत-सी हदीसें रिवायत की हैं।

हज़रत उमरा बिन्त अब्दुर्रहमान अंसारी – मशहूर सहाबी हज़रत असद बिन ज़रारा (रज़ि.) अंसारी की पोती थीं। हज़रत आइशा (रज़ि.) की ख़िदमत में बचपन ही से आ गई थीं। बहुत ज़हीन थीं, याददाश्त बहुत अच्छी थी। हज़रत आइशा (रज़ि.) उनपर बड़ी मेहनत करती थीं। हज़रत उमरा, हज़रत आइशा (रज़ि.) की रिवायत की हुई हदीसें बिल्कुल उन्हीं के अलफ़ाज़ में बयान करती थीं। उन्हें इल्म हासिल करने का दोहरा तजुर्बा हुआ। एक तो ये हज़रत आइशा (रज़ि.) से कमरे में इल्म हासिल करतीं, दूसरे यह कि दूर-दूर से लोग आते तो इनको ज़रिया बनाते यानी इनके ज़रिए सवालों को हज़रत आइशा (रज़ि.) की ख़िदमत में भेजते। ये सवाल का जवाब याद करके वापस होतीं और लोगों को बतातीं। इमाम बुख़ारी कहते हैं कि उमरा, हज़रत आइशा (रज़ि.) की प्राइवेट सेक्रेट्री थीं। उनकी बुद्धिमत्ता और याददाश्त को देखकर लोग उनकी बड़ी ख़ातिर करते, तोहफ़े देते। उमरा उन तोहफ़ों को हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास ले जातीं। उन्होंने जो हदीसें हज़रत आइशा (रज़ि.) से रिवायत की हैं वे बड़ी पक्की और मुस्तनद (भरोसेमन्द) मानी जाती हैं। दो-तीन मिसालें देखिए :

इब्ने मदीनी कहते हैं कि उमरा, हज़रत आइशा (रज़ि.) से जो हदीसें

रिवायत करें उनको मुस्तनद (भरोसेमन्द) समझो।

इमाम इब्ने हिब्बान का बयान है कि उमरा हज़रत आइशा (रज़ि.) की हदीसों की सबसे बेहतर जाननेवाली हैं।

हज़रत सुफ़ियान फ़रमाते हैं, "हज़रत आइशा (रज़ि.) की मुस्तनद और पक्की हदीसे वे हैं जिन्हें उमरा, उरवा और क़ासिम रिवायत करें।"

मशहूर इमाम अबू बक्र बिन मुहम्मद बिन अम्र बिन हज़्म, हज़रत उमरा के भतीजे थे। वे याद की हुई हदीसें फूफी के सामने बयान करते, वे उनमें संशोधन करतीं। इस सुधार व संशोधन से अबू बक्र को बहुत फ़ायदा पहुँचा। वे अपने वक़्त के बड़े आलिम हुए। ख़लीफ़ा उमर बिन अब्दुल अज़ीज (रह.) ने उनको मदीने का क़ाज़ी बनाया और हुक्म दिया कि हज़रत उमरा की बयान की हुई हदीसें नक़ल करके भेजें।

इमाम ज़ोहरी कहते हैं कि जब मैं इल्म सीखने निकला तो एक मुहद्दिस ने बताया कि अगर तुम इल्म हासिल करना चाहते हो तो हज़रत आइशा (रज़ि.) की शागिर्द हज़रत उमरा के पास जाओ। उनकी, हज़रत आइशा (रज़ि.) ने बड़े ध्यान से परवरिश की और पढ़ाया है। मैं हज़रत उमरा की ख़िदमत में पहुँचा और उनसे इल्म सीखना शुरू किया तो ऐसा मालूम हुआ कि वे इल्म का भरा हुआ समुंद्र हैं।

हज़रत सफ़िया बिन्त शीबा – हज़रत शीबा वे बुज़ुर्ग सहाबी थे जिनके पास नबी (सल्ल.) के ज़माने में काबा की कुँजी रहती थी। उन्हीं शीबा की बेटी सफ़िया थीं। हज़रत आइशा (रज़ि.) की ख़ास शागिर्द थीं। अपनी याददाश्त की वजह से उम्मुल-मोमिनीन की बहुत प्यारी थीं। उनके बारे में अबू दाऊद की राय देखिए :

'मैं अदी के साथ हज को चला। हम दोनों मक्का पहुँचे तो अदी ने मुझे हज़रत सफ़िया की ख़िदमत में भेजा। मैं वहाँ पहुँचा तो उनसे हज़रत आइशा (रज़ि.) की हदीसें सुनीं। उन्होंने लफ़्ज़-ब-लफ़्ज़ याद कर रखीं थीं।

आइशा (रज़ि.) बिन्त तलहा – मशहूर सहाबी हज़रत तलहा की बेटी

थीं। हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) की नवासी थीं। इस रिश्ते से हज़रत आइशा (रज़ि.) की भांजी हुईं। ख़ाला की गोद में पलीं, बढ़ीं। बहुत बड़ी आलिमा और बुज़ुर्ग ख़ातून थीं। उन्होंने हदीस के इल्म के साथ अदब (साहित्य) का इल्म भी सीखा। इमाम अबू ज़रअ दमिश्क़ी कहते हैं कि हम लोगों ने उनके तक़वा और अदब देखकर ही उनसे हदीसें लीं। तक़वे और ख़ुदा के डर का सिर्फ़ एक सुबूत पेश है :

एक बार हज़रत आइशा बिन्त तलहा बीमार हुईं, इलाज करनेवाले ने नबीज़ (नशेवाली दवा) पिलाना चाहा। उन्होंने नबीज़ का प्याला हाथ में लिया, ख़ुद से दुआ की फिर कहा कि हज़रत आइशा (रज़ि.) मेरी ख़ाला ने बयान किया है कि नबी (सल्ल.) ने नबीज़ से मना फ़रमाया है। वे यह कह रही थीं और प्याला हाथ से छूटकर गिर पड़ा। उसके बाद नबीज़ के बग़ैर ही वे अच्छी हो गईं।

अब सिर्फ़ उन बुज़ुर्ग औरतों का नाम लिखे जा रहे हैं जिन्होंने हज़रत आइशा (रज़ि.) से इल्म सीखा और मशहूर हुईं। बाक़ी को नज़रअंदाज़ किया जा रहा है। मर्दों के नाम भी छोड़ दिए जा रहे हैं, उनकी गिनती तो औरतों से भी ज़्यादा है।

सिर्फ ख़ातून (महिला) शागिर्दों के नाम

कुलसूम, ख़ैरा (हज़रत हसन बसरी (रह.) की माँ), असमा बिन्त अब्दुर्रहमान, बुरैरा (आइशा रज़ि. की बाँदी), बनाना बिन्त यज़ीद, बनान (अब्दुर्रहमान की बाँदी), बहीना (रह.), जसरा, हफ़्सा बिन्त अब्दुर्रहमान, बताला बिन्त यज़ीद, ज़िफ़रा, उमरा बिन्त क़ैस, शम्सिया (रह.), साइबा सलमा, सुमैया (बसरिया), ज़ैनब बिन्त अबी सलमा, ज़ैनब बिन्त नसर, ज़ैनब बिन्त मुहम्मद, रूमैसा, उम्मे हिलाल, उम्मे अब्दुल्लाह, उम्मे मुहम्मद, उम्मे कुलसूम (लैसिया), उम्मे कुलसूम बिन्त शमामा, उम्मे कुलसूम बिन्त अबी बक्र (बहन), उम्मे अलक़मा, उम्मे आसिम, उम्मे सईदा, उम्मे सालिम, उम्मे ज़राअ (आइशा रज़ि. की कनीज़), उम्मे दरदा (ये उम्मे दरदा यानी हज़रत अबू दरदा की बीवी नहीं हैं, उम्मे दरदा दूसरी बुज़ुर्ग ख़ातून हुई हैं), उम्मे हमीदा, फ़ातिमा बिन्त अबी जैश, करीमा बिन्त हमाम, क़मैर बिन्त उमैर, मुआज़ा (कूफ़िया), मैमूना बिन्त अब्दुर्रहमान (भतीजी), हनीद, हनीदा, कनी उम्मे बक्र, कनी उम्मे हजदर।

फ़तवे

मुफ़्ती (फ़तवा देनेवाला) होना इल्म का सबसे बड़ा दर्जा है और इल्म भी वह जिसपर आलिमों और इमामों को भरोसा हो और लोग भी उस इल्म पर एतबार करें। हज़रत आइशा के इल्म के बारे में ऊपर जो कुछ लिखा गया है उसकी हैसियत ऐसी है कि जैसे एक खलिहान में से मुट्ठी भर अनाज निकाल लिया जाए। हम तो मुट्ठी भर भी न निकाल सके। उसकी वजह यह है कि बहुत-सी वे बातें जानबूझ कर छोड़ दी गई हैं जिनका ताल्लुक़ सीधा अरबी ज़बान से है। अरबी ज़बान से सम्बन्धित भाग को उर्दू (या हिन्दी) में बदल देने से, उर्दू (या हिन्दी) पढ़नेवालों को कुछ हासिल न होगा।

बहरहाल यह बात खुलकर आ गई कि उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) इल्मोकमाल में बहुत ऊँचा मक़ाम रखती थीं और उस वक़्त के आलिम जो इमाम का दर्जा रखते थे, उनको हज़रत आइशा (रज़ि.) के इल्म पर भरोसा था। आम लोग भी हज़रत आइशा (रज़ि.) को भरोसेमन्द समझते थे। यही वजह थी कि नबी (सल्ल.) के बाद जिन बुज़ुर्गों को मुफ़्ती का मक़ाम मिला, उनमें हज़रत आइशा (रज़ि.) भी थीं। इतना ही नहीं, हज़रत अबू बक्र (रज़ि.), हज़रत उमर (रज़ि.) और हज़रत उसमान (रज़ि.) और दूसरे बड़े-बड़े सहाबा को जब किसी मसले में उलझन होती थी तो हज़रत आइशा (रज़ि.) से पूछते थे। फिर जो हज़रत आइशा (रज़ि.) बतातीं तो क़बूल कर लिया जाता था। जिन बुज़ुर्गों ने अव्वल दर्जे के सहाबा के फ़तवे जमा किए हैं वे लिखते हैं कि हज़रत आइशा (रज़ि.) के फ़तवे इतने ज़्यादा हैं कि अगर जमा किए जाएँ तो एक बड़ा दफ़्तर हो जाए।

उस वक़्त के ठीक राय रखनेवाले सहाबा में हज़रत उमर (रज़ि.) हज़रत अली (रज़ि.), हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि.), हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.), हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.), हज़रत आइशा (रज़ि.), हज़रत अबूमूसा अशअरी (रज़ि.), हज़रत मुआज़ बिन जबल (रज़ि.), हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि.), उबई बिन काब, अबू ज़र,

अबू दरदा, हज़रत ज़ैद बिन साबित (रज़ि.) का नाम लिया जाता है। ये सब सफ़र वग़ैरह में नबी (सल्ल.) के साथ रहते थे। क़ुरआन और हदीस की बारीकियों को समझनेवाले थे, उम्र में सब ही हज़रत आइशा (रज़ि.) से बड़े थे लेकिन रिवायतों से साबित है कि कभी-कभी उनमें से कुछ लोग अपनी मुश्किल हज़रत आइशा (रज़ि.) से हल कराते थे। हज़रत क़ासिम जो मदीना के उन सात इमामों में से एक थे और जो सहाबा के बाद इमाम माने गए, फ़रमाते हैं कि :

"हज़रत आइशा (रज़ि.) हज़रत अबूबक्र (रज़ि.) की ख़िलाफ़त (शासन) के ज़माने में ही मुफ़्ती का दर्जा हासिल कर चुकी थीं फिर हज़रत उमर (रज़ि.) और हज़रत उसमान (रज़ि.) के ज़माने में भी मुफ़्ती रहीं।" (इब्ने-साद)

"हज़रत आइशा (रज़ि.) हज़रत उमर (रज़ि.) के ज़माने में और उनके बाद हज़रत उसमान (रज़ि.) के ज़माने में फ़तवा देती थीं। हज़रत उमर (रज़ि.) और हज़रत उसमान (रज़ि.) उनसे हदीसें पूछा करते थे।" (इब्ने-साद)

हज़रत अली (रज़ि.) की ख़िलाफ़त (शासन) के ज़माने में भी वे मुफ़्ती रहीं फिर जब अमीर मुआविया (रज़ि.) का ज़माना आया तो वे भी शाम (सीरिया) से ऐसे फ़तवे पूछने के लिए आदमी भेजते थे जिनमें शाम के आलिमों को इख़्तिलाफ़ (मतभेद) होता था। अमीर मुआविया (रज़ि.) का क़ासिद (दूत) मदीना आता, हज़रत आइशा (रज़ि.) के दरवाज़े पर खड़ा होता, मसले पूछता। हज़रत आइशा (रज़ि.) जवाब देतीं फिर जब क़ासिद वापस होता तो इल्म का एक ज़ख़ीरा उसके साथ होता।

इसी तरह बुज़ुर्ग सहाबा में से हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.), हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.), हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि.) को जब मसला समझने में मुश्किल आती तो हज़रत आइशा (रज़ि.) से पूछते थे।

फ़तवा पूछने की ग़रज़ से दूर-दूर से लोग आते। उनमें से बहुत से ऐसे होते जो बेधड़क सवाल करते । उनको पहले फ़तवा पूछने के सलीक़े बतातीं, क़ुरआन व हदीस की अहमियत समझातीं उसके बाद फ़तवा देतीं। अगर किसी को शक

रह जाता तो सवाल पर सवाल करता। हज़रत आइशा (रज़ि.) बड़ी संजीदगी से सवालों का जवाब देतीं। कभी-कभी सवाल करनेवाला ऐसे मसले पूछने की ज़रूरत महसूस करता था जो पोशीदा (छिपेहुए) होते तो फरमातीं, इन्नल्-ला-ह ला यस् तह् मिनल हक़ (अल्लाह तआला हक़ ज़ाहिर करने में नहीं शर्माता)

फिर फ़रमातीं, "मैं तो तुम्हारी माँ हूँ। तुम माँ से परदा और हया करते हो, पूछो।" इस तरह हौसला बढ़ाने पर लोग अपने-अपने मक़ाम से मुश्किलें लाते, हल कराते, फिर भी अगर किसी मसले को पूछने की हिम्मत न होती तो उन ज़हीन लड़कियों को पूछने का ज़रिया बनाते, जिनका परदा नहीं हुआ था और वे हज़रत आइशा (रज़ि.) की शागिर्दी में थीं। कभी तो ज़बानी कहलवाते और कुछ आलिम लिख कर देते। लड़कियाँ ज़बानी जवाब भी लातीं और लिखकर भी। जैसा कि पहले बताया जा चुका है इस तरह के फ़तवे ज़्यादातर हज के ज़माने में पूछे जाते थे।

अगर कभी सहाबा (रज़ि.) की मजलिस में किसी मसले पर इख़्तिलाफ़ (मतभेद) होता तो सहाबा किसी को नुमाइंदा बनाकर हज़रत आइशा (रज़ि.) की ख़िदमत में भेजते। बहुत से नमूनों में से हम कुछ नमूने यहाँ पेश हैं :

हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि.) और हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि.) दोनों मुफ़्ती और बड़े सहाबा में से हैं। रोज़े के इफ़्तार में दोनों बुज़ुर्गों के बीच इख़्तिलाफ़ (मतभेद) था। हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि.) वक़्त होने पर इफ़्तार करते और फ़ौरन नमाज़ के लिए खड़े हो जाते। हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि.) इफ़्तार करके और ज़रा रुक कर नमाज़ पढ़ते। दो सहाबियों का इख़्तिलाफ़ आम लोगों में बेचैनी का कारण बना। लोग हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास गए, दोनों का नाम लिया, हाल बयान किया। आइशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, "उन दोनों में से जल्दी कौन साहब करते हैं?" लोगों ने बताया "अब्दुल्लाह बिन मसऊद।" हज़रत आइशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, "नबी (सल्ल.) ऐसा ही करते थे।"

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) ने फ़तवा दिया कि अगर किसी शख़्स को नहाने की ज़रुरत पड़ जाए और सुबह हो जाए तो उसका रोज़ा दुरुस्त न होगा। बड़ा नाज़ुक मसला था। अबू हुरैरा (रज़ि.) जैसे ऊँचे मरतबेवाले सहाबी का फ़तवा,

लेकिन लोगों के लिए एक मुश्किल थी। हालात ही तो हैं कभी चाहे-अनचाहे ऐसा होता कि नहाने की ज़रूरत पड़ जाती। अब वे ज़रा घबराए। लोगों ने सोचा कि इस बात का जाननेवाला अगर कोई हो सकता है तो वे नबी (सल्ल.) की पाक बीवियाँ ही हो सकती हैं। लोग हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास गए, मसला पूछा। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जवाब दिया, "नबी (सल्ल.) ऐसा नहीं करते थे। अगर कभी ऐसा हुआ तो नबी (सल्ल.) ने रोज़ा नहीं तोड़ा, ऐसी हालत में भी रोज़ा रखा।"

हज़रत आइशा (रज़ि.) से पूछकर; लोग उम्मुल मोमिनीन हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि.) के पास गए। उन्होंने हज़रत आइशा (रज़ि.) के जवाब को ही दोहराया। अब हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) के पास गए, उम्मुल मोमिनीन का फ़तवा बयान किया। हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) ने रुजू कर लिया यानी यही क़बूल कर लिया।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) फ़रमाते हैं कि जनाज़ा उठाने से वुज़ू टूट जाता है। हज़रत आइशा (रज़ि.) का फ़तवा है कि नहीं टूटता।

हज़रत अली (रज़ि.) और हज़रत उमर (रज़ि.) कहते हैं कि क़ुरबानी का गोश्त तीन दिन के बाद खाना जायज़ नहीं है। हज़रत आइशा (रज़ि.) का फ़तवा है कि जायज़ है।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) फ़रमाते हैं कि मुर्दे को नहलाने से नहलाने वाले पर ग़ुस्ल वाजिब हो जाता है। हज़रत आइशा (रज़ि.) का फ़तवा है कि वाजिब नहीं है।

हज़रत आइशा (रज़ि.) फ़रमाती हैं कि अगर कोई शौहर अपनी बीवी को तलाक़ का इख़्तियार दे दे और बीवी उस इख़्तियार को वापस करके शौहर ही को पसन्द करले तो तलाक़ न होगी जबकि हज़रत ज़ैद बिन साबित (रज़ि.) और हज़रत अली (रज़ि.) कहते हैं कि एक तलाक़ पड़ जाएगी।

लोगों को जिन बातों से रोका

उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) की ख़िदमत में लड़के, लड़कियाँ और दूसरे लोग रहते और दर्स, तालीम, तक़रीर व नसीहत का सिलसिला जारी रहता था। लड़के-लड़कियों और दूसरे लोगों से ग़लतियाँ होती थीं। उम्मुल मोमिनीन ग़लतियों पर बहुत ही नज़र रखती थीं। ग़लतियों पर इस्लाह का तरीक़ा बच्चों और बड़ों के लिए अलग-अलग था। बड़े ग़लती करते तो ग़ौर से देखती रहतीं। उसके बाद या तो किसी से कहलवा देतीं कि तुमने ग़लती की और क़ुरआन व हदीस के हवाले भी बता देतीं या ज़रूरत समझतीं तो ख़ुद कह देतीं। बच्चे ग़लती करते तो फ़ौरन टोक देतीं। अन्देशा यह था कि बच्चों को बताने में देर होगी तो वे अपनी ग़लती ही भूल जाएंगे।

ये भूल-चूक और ग़लतियाँ वे होतीं जो इल्म से ताल्लुक़ रखती थीं। आम लोगों को अगर नाजायज़ काम करते देखतीं तो सख़्ती से रोकतीं। अगर कभी कोई इजतिमाई ग़लती नज़र आती तो मदीना के गवर्नर को ध्यान दिलातीं और वह हज़रत आइशा (रज़ि.) के कहने के मुताबिक़ इस्लाह व सुधार करता या सज़ा देता। इस्लाह के इस तरीक़े की सिर्फ़ एक दो मिसालें यहाँ पेश हैं वरना ये इस्लाह की बातें इतनी ज़्यादा हैं कि उन सबका समेटना शायद उस वक़्त भी न हो सका जब हज़रत आइशा (रज़ि.) मौजूद थीं। है भी यह मुश्किल काम, बच्चे और औरतें हज़ारों की तादाद में हज़रत आइशा (रज़ि.) से दर्स और सबक़ लेते थे। रोज़ाना हज़ारों बातें होतीं। सच्ची बात यह है कि सबको कैसे घेरा जा सकता था। कुछ नमूने पेश हैं :

याद होगा कि एक गिरोह हज़रत उसमान (रज़ि.) का मुख़ालिफ़ हो गया था। उस गिरोह के कुछ बड़े लोग हज़रत उसमान (रज़ि.) को अपशब्द कहते थे। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने उनको इन लफ़्ज़ों में पैग़ाम भिजवाया:

> "मेरे बेटो ! सलाम के बाद– मैंने अपने कमरे में यह देखा है कि नबी (सल्ल.) पर वह्य नाज़िल होती। जिबरील (अलै.) ख़ुदा का पैग़ाम लाते। उसमान (रज़ि.) पास बैठे होते, नबी (सल्ल.) उनके कन्धों पर

हाथ मारते और फ़रमाते, उसमान लिखो! (फिर नाज़िल हुई आयत उनसे लिखवाते।)

"ऐ मेरे बेटो! अल्लाह तआला (वह्य लिखनेवाले का यह मक़ाम) आम लोगों को अता नहीं करता। इस लिए जो उसमान को अपशब्द कहे या लानत भेजे उसपर (उलटे) ख़ुदा की लानत होती है।"

इमाम मुहम्मद (रह.) ने इसी रिवायत को अपनी किताब में इस तरह लिखा है– "जो उन (उसमान) पर लानत भेजे, उसपर ख़ुदा की लानत हो। मैंने देखा है कि वह्य आती होती। उस वक़्त नबी (सल्ल.) उसमान (रज़ि.) के बदन का सहारा लिए बैठे होते थे। नबी (सल्ल.) ने अपनी दो बेटियाँ, एक-एक करके उनके निकाह में दीं। वह्य लिखने की ख़ुशक़िस्मती उनको मिली। ख़ुदा यह बुलन्द मरतबा उसको इनायत फ़रमाता है जो उसके नज़दीक क़ाबिले क़द्र और इज़्ज़तवाला होता है।

हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) की ख़िलाफ़त (शासन) के ज़माने में ईरान फ़तह हुआ था। ईरानी खेल-तमाशे और दूसरे जश्न वग़ैरह के बड़े शौक़ीन होते हैं। अरबों का उनसे मेल-जोल बढ़ा तो अरबों ने उनकी बहुत-सी बातें सीख लीं। शतरंज, कबूतरबाज़ी और जुआ शुरू होने लगा। सहाबा (रज़ि.) ने ऐसे लोगों को सख़्ती से पकड़ा। हज़रत आइशा (रज़ि.) के मकान के किराएदार, मकान में इसी तरह के खेल में बाज़ी लगाते थे। ताकीद करके कहलवाया, अगर तुम अपने गुट्टे न फेंकोगे तो मैं घर से निकलवा दूँगी।

अजम के लोग एक नशीली चीज़ पीते थे, उसका नाम 'बाज़क़' था। अजम फ़तह हुआ तो अजमियों ने बाज़क़ की लत अरबों को लगा दी और कहा कि यह शराब नहीं है। बाज़क़ मदीना के कुछ घरों में घुस आई। हज़रत आइशा (रज़ि.) को मालूम हुआ तो औरतों की एक मजलिस में बाज़क़ के ख़िलाफ़ तक़रीर की। फिर बताया कि बाज़क़ के बरतनों में छुहारे भी न भिगोए जाएँ। अगर तुम्हारे मटकों से नशा पैदा हो तो, वह भी हराम है क्योंकि नबी (सल्ल.) ने हर उस चीज़ से रोका है जो नशा पैदा करे।

एक बार शाम (सीरिया) की कुछ औरतें आईं। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने

उनसे कहा, क्या तुम वही हो जो हमामों में नंगी होकर नहाती हो ? उन औरतों ने कहा, "हाँ"। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने कहा, "नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया है कि जो औरत अपने घर से बाहर अपने कपड़े उतारती है, वह अपने ख़ुदा से परदा तोड़ती है।"

एक औरत की लड़की बहुत ख़ूबसूरत थी, लेकिन बीमारी से उसके बाल झड़ गए थे। उस लड़की की शादी तय हुई। वह औरत हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास आई। अर्ज़ किया कि यहूदी औरतें सिर की ख़ूबसूरती के लिए बनावटी बाल जोड़ लेती हैं, क्या मैं अपनी बेटी के सिर पर बाल मँढ दूँ? हज़रत आइशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, "नबी (सल्ल.) ने बनावटी बाल जोड़ने और जुड़वानेवालियों पर लानत भेजी है।"

इब्ने अबी सायब मशहूर मुक़र्रिर (तक़रीर करनेवाले) थे। पिछले पन्नों में बताया जा चुका है कि वे रोज़ाना तक़रीर किया करते थे और दुआ में बड़े अदबी और बनावटी जुमले सोच-सोचकर कहा करते थे। उनको ऐसा करने से रोका और दो तक़रीरों के बीच कुछ दिन का फ़ासला करने की सख़्ती से हिदायत की।

अगर शागिर्द से और किसी शख़्स से झगड़ा हो जाता तो शागिर्द को ईसार और क़ुरबानी पर उभारती थीं। अबू सलमा बड़े प्यारे शागिर्द थे। एक बड़े ऊँचे सहाबी (अब्दुर्रहमान बिन औफ़ रज़ि.) के बेटे थे। हज़रत आइशा (रज़ि.) शागिर्द को बाप का नमूना देखना चाहती थीं। एक बार अबू सलमा का झगड़ा एक ज़मीन के लिए किसी से हुआ। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने अबू सलमा से कहा, ज़मीन को लात मारो, नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया है कि, "जो किसी की बालिश्त भर ज़मीन भी ज़ुल्म करके लेगा तो (क़ियामत के दिन) ज़मीन के सातों तबक़ों का बोझ उसकी गरदन पर लादा जाएगा।

एक बार बसरा से कुछ औरतें आईं। मालूम हुआ कि उनके मर्द पानी से तहारत नहीं करते (कपड़े या काग़ज़ या किसी चीज़ से पोंछ लेते हैं) हज़रत आइशा (रज़ि.) ने औरतों से कहा, "मैं तुम्हारे मर्दों से न कहूँगी। तुम उनसे कहना कि पानी से धोया करें, यही सुन्नत है।"

एक बार हज में एक औरत को देखा कि उसकी चादर में सलीब (ईसाइयों का ख़ास निशान) की छाप है। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने उसे डाँटा, "उतार दे। नबी (सल्ल.) ऐसे कपड़ों को देखते थे तो फाड़ दिया करते थे।"

मदीना की औरतें बच्चों की पैदाइश के मौक़े पर उन्हें हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास लातीं, बरकत और दुआ की दरख़ास्त करतीं। एक बार एक औरत आई, हज़रत आइशा (रज़ि.) ने देखा कि बच्चे के सिर के तले उस्तरा रखा है। पूछा, "यह क्या?" औरत ने बताया, "उस्तरा रखने से भूत डर कर भागता है।" हज़रत आइशा (रज़ि.) ने उस्तरा फेंक दिया, नसीहत की कि ऐसा मत किया करो। नबी (सल्ल.) ने शगुन से रोका है (यह सब वहम है)।"

औरतों को ज़ेवर पहनने की इजाज़त है लेकिन ऐसे ज़ेवर पहनना मना है जिनसे आवाज़ पैदा हो और घण्टे की आवाज़ भी मना है। एक बार एक लड़की घुँघरू पहनकर आई, उसकी माँ साथ थी। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने लड़की की माँ से कहा, "इसके घुँघरू काट दो, मेरे पास इस तरह न लाया करो।" कुछ औरतें और बैठी थीं, उन्होंने पूछा, "क्यों?" हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जवाब दिया, "जिस घर में (और शायद यह भी कहा कि जिस क़ाफ़िले में) घण्टा बजता है वहाँ फ़रिश्ते नहीं आते।"

बड़े भाई अब्दुर्रहमान की बेटी हज़रत हफ़्सा बचपन से तालीम हासिल कर रही थीं। थोड़े ही समय में उन्होंने काफ़ी इल्म हासिल कर लिया था। वे उस समय तक बालिग़ न हुई थीं इसलिए इस ख़याल से कि अभी परदा तो हुआ नहीं, बारीक दुपट्टा ओढ़ कर फूफी के पास आईं। हज़रत आइशा (रज़ि.) को ग़ुस्सा आ गया, डाँटते हुए कहा, "तुम नहीं जानतीं (यानी ज़रूर जानती हो) कि सूरा नूर में ख़ुदा ने क्या हुक्म दिया है।" (जानबूझ कर हुक्म के ख़िलाफ़ किया। परदा वाजिब नहीं हुआ न सही,लेकिन अमल अभी से शुरू कर देना चाहिए) भतीजी के सिर से दुपट्टा खींचा और फाड़ दिया और दूसरा मोटा दुपट्टा मँगाकर ओढ़ा दिया।

यही भाई अब्दुर्रहमान एक बार जल्दी में कहीं से आए, झटपट वुज़ू करके वापस होने लगे तो हज़रत आइशा (रज़ि.) ने टोका, वुज़ू अच्छी तरह किया

करो। मैंने नबी (सल्ल.) से सुना है कि वुज़ू में जो अंग सूखे रहेंगे, उनपर जहन्नम की फिटकार (या शायद आग)।

एक बार कुछ औरतें मेहमान थीं। उनमें से दो जवान लड़कियाँ चादर ओढ़े बग़ैर नमाज़ पढ़ने लगीं। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, "यह ग़लत है, कोई लड़की चादर के बग़ैर नमाज़ न पढ़े। नबी (सल्ल.) का ताकीदी हुक्म है।"

एक बिदअत (दीन में अपने मन से नई रस्म निकालना) की रोक थाम आज तक मुसलमानों में न हो सकी। रमज़ान की आख़िरी तारीख़ों में शबीना होता है। एक रात में तरावीह के अन्दर पूरा क़ुरआन ख़त्म किया जाता है। सहाबा ऐसा तो न करते थे लेकिन कुछ इतना तेज़ पढ़ते थे कि एक रात में दो-दो बार क़ुरआन ख़त्म कर लेते थे। उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) ने उनको टोका। फ़रमाया, "तुम्हारा पढ़ना और न पढ़ना दोनों बराबर है।" उसके बाद नबी (सल्ल.) का क़ुरआन तिलावत करने का तरीक़ा बताया कि नबी (सल्ल.) ठहर-ठहर कर क़ुरआन पढ़ते, ख़ुशख़बरी की आयतों पर दुआ माँगते। इस तरह ज़्यादा से ज़्यादा रात में सूरा निसा तक ही तिलावत कर पाते थे।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) मशहूर सहाबी हैं। उनकी दिलचस्प बात आगे पेश हैं :

एक बार वे मस्जिदे नबवी में आए (मालूम नहीं क्यों, उनकी यह आदत तो न थी) उम्मुल मोमिनीन के कमरे के पास बैठे और बुलन्द आवाज़ से जल्दी-जल्दी हदीसें बयान करने लगे। हज़रत आइशा (रज़ि.) उस वक़्त नमाज़ पढ़ रही थीं। नमाज़ से फ़ारिग़ हुईं तो अबू हुरैरा (रज़ि.) को टोकना चाहा, मगर वे जा चुके थे। याद रखा, फिर जब हज़रत उरवा (भांजे और मशहूर शागिर्द) आए तो उनसे बड़ी हैरत के साथ हज़रत आइशा (रज़ि.) ने कहा कि अबू हुरैरा (रज़ि.) ने जल्दी-जल्दी मुझे सुनाने को हदीसें बयान कीं और चले गए। अगर मुझसे मिल लेते तो मैं कहती कि नबी (सल्ल.) इस तरह बातें नहीं करते थे। (हज़रत आइशा रज़ि. का मंशा था कि उरवा जाकर हज़रत अबू हुरैरा रज़ि. से यह पैग़ाम कह दें ।)

एक वाक़िआ और पेश है। हज के ज़माने में एक बार कुछ नौजवान हँसते

हुए आए। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने पूछा, "क्यों हँसते हो?" उन्होंने बताया कि एक साहब ख़ेमे की डोरी में ऐसे फँसे कि गरदन में मोच आ गई (या टूट गई), यह देखकर हमको हँसी आ गई। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने उनको नसीहत की, कि हँसना नहीं चाहिए, किसी मुसलमान के काँटा चुभता है, उसपर कोई मुसीबत आती है तो अल्लाह-तआला उसका मरतबा बढ़ाता है और उसके गुनाहों को माफ़ करता है।

ये हैं इस्लाह के वे नमूने जो हज़ारों में से छांटकर कुछ पेश किए गए हैं। इनमें मर्दों और औरतों सबके लिए सबक़ है। अगर अल्लाह तौफ़ीक़ दे और हम अमल करें।

शख़्सियत के हमाजहत पहलू

ख़ुद इल्म व अमल का नमूना

हज़रत आइशा (रज़ि.) के हालात और उनके इल्म और तालीम के नमूने और इस्लाह के तरीक़े सामने आने के बाद यह देखना ज़रूरी है कि ख़ुद हज़रत आइशा (रज़ि.) कितना अमल करती थीं। सहाबा किराम और सहाबियात के बारे में ज़िक्र के अन्दर यह बात मिलती है कि नबी (सल्ल.) उनमें जिसको एक बार किसी बात पर टोक देते थे फिर वे दोबारा सहाबी या सहाबियात से न होती थीं।

हज़रत आइशा (रज़ि.) की नबी (सल्ल.) ने शुरू ही से तरबियत की थी। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने नबी (सल्ल.) की एक-एक बात देखी थी और उसी साँचे में ढल गई थीं। उम्मुल मोमिनीन के अमली नमूने हम सब के लिए (चाहे मर्द हों या औरत) हिदायत का ज़रिया हैं। सब से पहले इबादत का नमूना देखिए:

इबादत

वे इबादतें जो फ़र्ज़ हैं, उनके बारे में तो सहाबा और सहाबियात की पाबन्दी मशहूर है ही, हज़रत आइशा (रज़ि.) फ़र्ज़ नमाज़ों की पाबन्दी के अलावा ज़्यादातर वक़्त नफ़्ल नमाज़ों में गुज़ारती थीं। चाश्त की नमाज़ की पाबन्दी नबी (सल्ल.) की ज़िन्दगी ही में करने लगी थीं। नबी (सल्ल.) के बाद भी चाश्त की नमाज़ कभी नहीं छोड़ी।

यही हाल तहज्जुद की नमाज़ का था। तहज्जुद की नमाज़ नबी (सल्ल.) पर फ़र्ज़ थी। उम्मत पर तहज्जुद की नमाज़ फ़र्ज़ नहीं थी, लेकिन नबी (सल्ल.) सहाबा को तहज्जुद पढ़ने के लिए उभारते थे। हज़रत आइशा (रज़ि.) को रात के वक़्त सोते से जगाते। नबी (सल्ल.) के ज़माने से ही हज़रत आइशा (रज़ि.) तहज्जुद की पाबन्द हो गई थीं, फिर उम्रभर तहज्जुद की नमाज़ न छोड़ी। हद यह कि अगर कभी तहज्जुद के वक़्त आँख लग जाती तो सवेरे उठ कर पहले

तहज्जुद पढ़तीं उसके बाद फ़ज्र की नमाज़। एक बार ऐसे ही मौक़े पर हज़रत क़ासिम (भतीजे) आ गए, उन्होंने फ़ज्र के वक़्त ज़्यादा रकअतें पढ़ते देखा तो पूछा, "फ़ज्र में ये ज़्यादा रकअतें कैसी?" हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जवाब दिया, "तहज्जुद न पढ़ सकी थी। मैं तहज्जुद छोड़ नहीं सकती।" रमज़ान के महीने में तरावीह के लिए अपने ग़ुलाम को तैयार किया था। वह इमाम बनता और हज़रत आइशा (रज़ि.) उनके पीछे पढ़तीं।

रमज़ान के अलावा रोज़ा रखने का ख़ास इन्तिज़ाम था। अरफ़ा के दिन रोज़ा ज़रूर रखतीं। एक बार अरफ़ा के दिन सख़्त गर्मी और तेज़ तपिश थी। हज़रत आइशा (रज़ि.) रोज़े से थीं। तपिश की शिद्दत से सिर पर बार-बार पानी के छींटे दिए जा रहे थे, इतने में अब्दुर्रहमान (भाई) आ गए। यह हाल देखा तो कहा, "ऐसी गर्मी में नफ़्ल रोज़ा रखने की क्या ज़रूरत थी?" हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जवाब दिया, "मैंने नबी (सल्ल.) से सुना है कि आज के दिन रोज़ा रखने से साल भर के गुनाह माफ़ हो जाते हैं, तो अरफ़ा के दिन रोज़ा नहीं छोड़ूँगी।" हर साल हज करने भी बड़ी पाबन्दी के साथ जातीं। हज में जो मसरूफ़ियतें होतीं वे पहले बयान की जा चुकी हैं।

ख़ुदा का ख़ौफ़

इबादत और आमाल का असल जौहर ख़ुदा का ख़ौफ़ है। हज़रत आइशा (रज़ि.) बहुत नर्मदिल थीं। इबादत के वक़्त ख़ुदा का ख़ौफ़ तारी हो जाता। किसी-किसी आयत के तिलावत करने पर आँसू बहने लगते। हज़रत अली की ख़िलाफ़त (शासन) के ज़माने में उनसे जो ग़लती हो गई थी यानी यह कि वे दूसरी पाक बीवियों की तरह घर में नहीं रहीं, जबकि क़ुरआन में हुक्म है कि तुम घरों में ठहरी रहो। यह आयत तिलावत करतीं तो फूट-फूट कर रोतीं। फ़रमाया करतीं, "काश! मेरा वुजूद ही ख़त्म हो जाता!"

इसी तरह एक बार भांजे अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) से ग़लती हो गई। वजह यह हुई कि वे अकसर ख़ाला के लिए रक़म भेजा करते थे। एक बार उन्होंने एक बड़ी रक़म भेजी। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने वह सारी रक़म ख़ैरात कर दी। अब्दुल्लाह ने सुना तो ज़बान से निकल गया, "इस क़द्र फ़ैयाज़ी, मैं कहाँ तक

भेजूँ।'' इसपर हज़रत आइशा (रज़ि.) ने नाराज़ होकर क़सम खाली कि अब्दुल्लाह से न बोलूँगी। अब्दुल्लाह को मालूम हुआ तो बहुत घबराए, ख़ाला को मनाने के जतन करने लगे। हज़रत आइशा (रज़ि.) किसी तरह क़सम तोड़ने पर तैयार न हुईं। आख़िरकार अब्दुल्लाह ने बुज़ुर्गों को बीच में डाला कि ख़ाला से मेरी ख़ता माफ़ करा दें। बुज़ुर्गों के कहने से हज़रत आइशा (रज़ि.) मजबूर हो गईं, क़सम तोड़ी, कफ़्फ़ारा अदा किया। ग़ुलाम पर ग़ुलाम आज़ाद किए। यहाँ तक कि चालीस ग़ुलाम आज़ाद किए। फिर भी क़सम तोडने का इतना असर था कि जब याद आता तो रोने लगतीं।

फ़ैयाज़ी (दानशीलता)

हज़रत आइशा (रज़ि.) बहुत ख़ैरात करनेवाली और दानशील थीं। जो हाथ में आ जाता, माँगनेवाले को दे देतीं। हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) कहते हैं कि मैंने ख़ाला से बढ़कर किसी को ख़ैरात करनेवाला न देखा। दूसरे भांजे उरवा कहते हैं कि ख़ाला के पास मेरे सामने 70,000 की रक़म आई, ख़ाला ने सब ख़ैरात कर दी।

एक बार हज़रत मुआविया (रज़ि.) ने एक लाख की रक़म भेजी। ये रक़म बाँटने लगीं। उस दिन हज़रत आइशा (रज़ि.) का रोज़ा भी था। शाम होते-होते सब ख़ैरात कर दी। बाँदी ने अर्ज़ किया, ''इफ़्तार के लिए कुछ बचा लेतीं।'' हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जवाब दिया, ''उस वक़्त क्यों न याद दिलाया।'' इसी तरह एक बार अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) ने एक लाख दिरहम भेजे, वह रक़म भी ख़ैरात कर दी, दो दिरहम बचे थे और माँगनेवाला सामने था। बाँदी ने याद दिलाया, ''आज आपका रोज़ा है ये दो दिरहम बचा लीजिए।'' हज़रत आइशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, ''अब नहीं।'' और ज़रूरतमन्द को दोनों दिरहम दे दिए।

एक दिन रोज़े से थीं। घर में इफ़्तार के लिए सिर्फ़ एक रोटी थी, इतने में एक औरत आई। बाँदी से कहा: ''वह रोटी उसे दे दे।'' बाँदी ने याद दिलाया कि वह रोटी तो इफ़्तार के लिए रखी है। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, ''दे दे।'' फिर ऐसे हुआ कि कहीं से शाम को बकरी का सालन आया। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने बाँदी से कहा, ''देखो! ख़ुदा ने रोटी से अच्छी चीज़ भेज दी, वह अच्छी या यह सालन और सवाब ?''

एक बार हज़रत आइशा (रज़ि.) ने अपना एक मकान बेचा और सारी रक़म ख़ैरात कर दी।

एक बार एक औरत अपने दो बच्चों को लेकर आई। उस वक़्त घर में कुछ न था, ढूँढा तो एक खजूर निकला। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने उसके दो टुकड़े किए और एक-एक टुकड़ा बच्चों को दे दिया। एक बार एक फ़क़ीर आया, घर में अँगूर का एक दाना था, वह उसे दे दिया। फ़क़ीर ताज्जुब से मुँह देखने लगा। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, "देखो तो इसमें कितने ज़र्रे हैं।" (जिसने एक ज़र्रा भर भी नेकी की, अल्लाह उसको देखेगा।)

उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) की कोई औलाद न थी, तो बच्चों को पाल लिया करतीं। उनकी तरबियत करतीं और बड़े हो जाते तो उनकी शादियाँ कर देती थीं। बात-बात पर ग़ुलाम आज़ाद कर दिया करती थीं।

ख़ुद्दारी

हज़रत आइशा (रज़ि.) बहुत ख़ुद्दार थीं। इसी सिलसिले में बहुत-से क़िस्से हैं उनमें से एक वाक़िआ लाँछन की घटना का भी है। हज़रत आइशा (रज़ि.) पर मुनाफ़िक़ों ने तोहमत लगाई थी। उसके बाद जब अल्लाह तआला ने हज़रत आइशा (रज़ि.) के बेक़ुसूर होने की आयतें नाज़िल कीं तो माँ ने बेटी से कहा कि शौहर का शुक्रिया अदा करो। हज़रत आइशा (रज़ि.) बोलीं, "मैं तो सिर्फ़ अपने अल्लाह का शुक्र अदा करूँगी, जिसने मुझे बचाया और मुझे इज़्ज़त बख़्शी।"

यह भी याद होगा कि एक दिन ग़नीमत के माल में से मोतियों की डिबिया हज़रत उमर (रज़ि.) ने हज़रत आइशा (रज़ि.) की ख़िदमत में भेजी और दूसरी पाक बीवियों (रज़ि.) को मोतियों में से नहीं दिया तो ग़ैरत के मारे पुकार उठीं "ऐ ख़ुदा! मुझे उमर (रज़ि.) के एहसानों से बचा।"

एक बार अरब के एक रईस ने तोहफ़े के तौर पर एक बड़ी रक़म और बहुत से कपड़े भेजे। हज़रत आइशा (रज़ि.) का उसूल था कि जब कहीं से तोहफ़ा आता तो वे भी तोहफ़े के बदले कुछ न कुछ भेजतीं। लेकिन जब उस रईस का तोहफ़ा आया तो उस वक़्त घर में कुछ न था। तोहफ़ा वापस लौटाना चाहा

लेकिन याद आया कि नबी (सल्ल.) ने तोहफ़ा वापस करने से मना किया है, फिर रख लिया और ग़रीबों में बाँट दिया।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.), जो उनके भांजे थे, से ग़ैरत और ख़ुद्दारी की वजह से नाराज़ हो गई थीं। ख़ुद्दारी की वजह से अपनी तारीफ़ पसन्द नहीं करती थीं। मशहूर क़िस्सा है कि आख़िर वक़्त में बीमार हो गईं तो हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) ने ख़ैरियत पूछने के लिए, आने की इजाज़त चाही। हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) हज़रत आइशा (रज़ि.) के इल्म, कमाल और परेहज़गारी व तक़वा की तारीफ़ करनेवालों में से थे। हज़रत आइशा (रज़ि.) को अन्देशा हुआ कि वे आकर मेरी तारीफ़ करेंगे, इजाज़त देने से रुकीं। लोगों ने हज़रत अब्दुल्लाह का मक़ाम याद दिलाया, सिफ़ारिश की तो आने की इजाज़त दी। हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि.) ने सचमुच आते ही उम्मुल मोमिनीन की बड़ाई बयान करना शुरू कर दी। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने सुनकर कहा, "काश! मैं पैदा न हुई होती।"

अल्लाह पर भरोसा और सन्तोष

नबी (सल्ल.) ने अपनी तरबियत में हज़रत आइशा (रज़ि.) को सब्र और सन्तोष की जो तालीम दी थी, वे उसका नमूना थीं। जब नबी (सल्ल.) के इन्तिक़ाल का वक़्त आया तो फ़रमाया, "आइशा! वे सोने की अशरफ़ियाँ होंगी।" यह सुनते ही फ़ौरन हज़रत आइशा (रज़ि.) ने अशरफ़ियाँ पेश कर दीं और नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया कि, "इन्हें ख़ैरात कर दो।" हज़रत आइशा (रज़ि.) ने ख़ैरात कर दीं। जिस दिन नबी (सल्ल.) का इन्तिक़ाल हुआ उस दिन घर में फ़ाक़ा था।

नबी (सल्ल.) के बाद तोहफ़े बहुत आते थे लेकिन शाम होते-होते घर में कुछ न रहता था। बाँदी टोकती तो ख़ुदा का नाम लेतीं। नबी (सल्ल.) के इरशाद के मुताबिक़ हमेशा ग़रीबों की तरह रहीं। उसी कमरे में ज़िन्दगी गुज़ारी जिसमें नबी (सल्ल.) के साथ रहती थीं। उस कमरे को उस वक़्त छोड़ा जब हज़रत उमर (रज़ि.) ने अपनी क़ब्र के लिए उसमें जगह माँगी।

लाखों की रक़म एक-एक दिन में अल्लाह की राह में लुटा दी और दामन झाड़कर उठ खड़ी हुईं और ख़ुशी-ख़ुशी उठीं।

माफ़ी और दरगुज़र से काम लेना

माफ़ी और दरगुज़र करने के हज़ारों क़िस्से हैं। एक छोड़ कई सौतने थीं, उनके साथ आपसी मन-मुटाव के क़िस्से पिछले पृष्ठों में आ चुके हैं लेकिन न उनकी बुराई करतीं, न ग़ीबत। हज़रत आइशा (रज़ि.) किसी की बुराई सुनना भी पसन्द न करतीं, यहाँ तक कि हज़रत हस्सान (रज़ि.) को भी माफ़ कर दिया था। हज़रत हस्सान ने तोहमत वाली घटना में मुनाफ़िक़ों की हाँ में हाँ मिला दी थी। औरतें तो ऐसे मुख़ालिफ़ को, जो इज़्ज़त पर हमला करनेवालों के साथ होता है, कभी माफ़ नहीं करतीं लेकिन हज़रत आइशा (रज़ि.) के सामने जब किसी ने हज़रत हस्सान (रज़ि.) की बुराई की तो उसे रोक दिया और हज़रत हस्सान (रज़ि.) की तारीफ़ में कहा कि वे उन अरब के शाइरों के जवाब में शेर कहते थे जो नबी (सल्ल.) का अपमान और बुराई करते थे।

हज़रत हस्सान (रज़ि.) हज़रत आइशा (रज़ि.) की ख़िदमत में आया करते थे। वे उनको इज़्ज़त से बिठाती थीं। लोगों से कहतीं, "ये नबी (सल्ल.) की तारीफ़ करनेवाले हैं।" उनसे शेर सुनतीं और हौसला अफ़ज़ाई करतीं।

दिलचस्प क़िस्सा है कि हज़रत आइशा (रज़ि.) एक आदमी को बहुत बुरा समझती थीं लेकिन जब वह मरा तो दुआ के लिए हाथ उठा दिए। शागिर्द मौजूद थे, उन्हें हैरत हुई। किसी ने कहा भी कि वह ऐसा और वैसा है। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, " नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया है कि मुर्दों को भलाई के साथ याद करो।"

हिम्मत और दिलेरी

ख़ुदा के सिवा किसी से न डरती थीं। रात में क़ब्रिस्तान चली जातीं। लड़ाई के मैदान में जब तीर बरसते होते तो पानी की मशक लादे हुए जख़्मियों को पानी पिलाती फिरतीं। ख़न्दक़ की लड़ाई में जब सारा अरब मदीना पर चढ़ आया था और मुसलमानों में घबराहट फैल गई थी तो हज़रत आइशा (रज़ि.) जा-जाकर लड़ाई के मैदान देखतीं। नबी (सल्ल.) से कई बार लड़ाई में हिस्सा लेने की इजाज़त माँगी, लेकिन इजाज़त न मिली। हज़रत अली (रज़ि.) के मुक़ाबले में

जिस शान से जमल की लड़ाई में हिस्सा लिया, वह बयान हो चुका है। लड़ाई के मैदान से उस वक़्त हटीं जब हज़रत अली (रज़ि.) ने उनके ऊँट की कोचें कटवा दी थीं। उस हालत में भाई मुहम्मद बिन अबी बक्र ने हौदे के अन्दर हाथ डाला कि बहन को गिरने से बचा लें, तो डाँटा, कौन है ?

फिर जिस हिम्मत के साथ फ़ौजों के सामने ख़ुत्बा दिया वह आगे उनकी उन खूबियों में बयान किया जाएगा जिनका ताल्लुक़ तक़रीर से है।

परदा

परदे का बहुत लिहाज़.रखती थीं। एक बार एक साहब आए, उनके भाई की बीवी ने हज़रत आइशा (रज़ि.) को दूध पिलाया था। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने उनसे परदा किया, तो उन साहब ने कहा, "मैं आपका चचा हूँ।" हज़रत आइशा (रज़ि.) बोलीं, "मैंने सिर्फ़ तुम्हारी भाभी का दूध पिया है, तुमसे क्या रिश्ता ?" इतने में नबी (सल्ल.) आ गए और फ़रमाया, "बेशक ये तुम्हारे चचा हैं।" तो सामने आईं।

हजरे अस्वद को बोसा देने का बड़ा सवाब है लेकिन भीड़ की वजह से कभी कोशिश नहीं की। एक बार कुछ बीवियों ने कहा, "आइए, हम आपको घेरे में ले लें।" तब भी राज़ी न हुईं। तवाफ़ की हालत में चेहरे पर नक़ाब डाले रहतीं, जबकि आपको तवाफ़ करते देखकर मर्द तवाफ़ के लिए जगह ख़ाली कर देते थे।

नाबीना (अंधे) लोगों से भी परदा करती थीं। एक बार एक नाबीना ताबई हज़रत इसहाक़ से आपने परदा किया तो वे बोले मुझसे क्या परदा, मैं तो आपको देखता नहीं तो हज़रत आईशा (रज़ि.) ने जवाब दिया, "तुम नाबीना हो, मैं तो नहीं।"

हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) हज़रत आइशा (रज़ि.) के कमरे में दफ़्न हुए तो कमरे में रहना छोड़ दिया जबकि मुर्दों से परदा नहीं है।

वकालत

नबी (सल्ल.) अल्लाह के आख़िरी नबी थे। दीन और शरीअत में नबी (सल्ल.) का फ़ैसला आख़िरी फ़ैसला माना जाता है। आपके फ़ैसले से हटना ईमान से दूर होना है। नबी (सल्ल.) से हर बात का फ़ैसला मालूम करने में मर्दों को बड़ी आसानियाँ थीं। सामने आकर हर शख़्स बात कर लिया करता था। औरतों को यह आसानी न थी। नबी (सल्ल.) में हया बहुत थी, इसलिए बहुत-सी बातें औरतों को बताने में झिझकते थे। ऐसी हालत में उम्महातुल मोमिनीन ज़रिया बनती थीं। यही वजह है कि औरतों से जुड़े बहुत-से मसले उम्महातुल मोमिनीन (रज़ि.) से उम्मत को मिले। उम्महातुल मोमिनीन (रज़ि.) में सबसे बेहतर औरतों की वकील अगर थीं तो हज़रत आइशा (रज़ि.) थीं। वे औरतों की तरफ़ से नबी (सल्ल.) के सामने सिफ़ारिशी बन जातीं। नबी (सल्ल.) से रिआयतें दिलातीं। ज़िन्दगी में जो बातें पेश आती हैं, उनमें से सिर्फ़ एक-एक वाक़िआ इस सिलसिले में पेश है :

एक बुज़ुर्ग सहाबी थे, हज़रत उसमान बिन मज़ऊन (रज़ि.)। तक़वा का यह आलम था कि दुनियावी असर पास न आने देते। यहाँ तक कि फ़ितरी बातों को दबा देते। पूरे साधू बनकर रह गए थे। एक बार उनकी बीवी हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास आईं तो हज़रत आइशा (रज़ि.) ने उनमें बनाव-शृंगार न पाया, तो पूछा, "शौहर के होते यह इतनी ज़्यादा सादगी क्यों ?"

उनकी बीवी बड़ी हयावाली थीं। दबे लफ़्ज़ों में जवाब दिया, "उसमान दिन भर रोज़ा रखते हैं और रात भर नमाज़ें पढ़ते हैं।" हज़रत आइशा (रज़ि.) बात को समझ गईं। फिर जब नबी (सल्ल.) आए तो बड़ी ख़ूबसूरती से मामला सामने रखा। नबी (सल्ल.) हज़रत उसमान बिन मज़ऊन (रज़ि.) के पास गए और फ़रमाया, "उसमान ! अल्लाह ने मुझे रहबानियत (संन्यास) सिखाने नहीं भेजा है, क्या तुम मेरी पैरवी न करोगे ? मैं तुम सब में सबसे ज़्यादा ख़ुदा से डरनेवाला हूँ और सबसे ज़्यादा अल्लाह के हुक्म को समझनेवाला और उनपर अमल करनेवाला हूँ फिर भी बीवियों का हक़ अदा करता हूँ" इसके बाद वे

हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास आईं तो शृंगार किए हुए थीं।

यह मर्द का वाक़िआ हुआ। अब एक सहाबिया का क़िस्सा सुनिए। हज़रत हौला, इबादत करने में पूरी-पूरी रात गुज़ार देती थीं, सोती न थीं। एक बार उनको हज़रत आइशा (रज़ि.) ने कहीं जाते देखा। नबी (सल्ल.) भी उस वक़्त मौजूद थे। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने बताया, "ऐ अल्लाह के रसूल! यह हौला हैं, रात भर नमाज़ें पढ़ती हैं, सोती तक नहीं।" नबी (सल्ल.) ने कहा, "काम उतना करो कि हो सके।"

एक बार एक औरत को उनके शौहर ने बुरी तरह पीट दिया, इतना कि बदन में निशान पड़ गए। वह औरत हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास आई और बदन दिखाया। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने कहा, "ठहरो।" फिर नबी (सल्ल.) आए तो इस तरह अर्ज़ किया :–

"मुसलमान बीवियाँ जो दुःख उठा रही हैं उसकी मिसाल मैंने नहीं देखी। इस बेचारी का बदन इसके कपड़ों से ज़्यादा हरा हो रहा है।"

इन बीवी के शौहर को मालूम हुआ तो वे दौड़े आए। नबी (सल्ल.) ने आमतौर से ऐसी सज़ा देने से सबको मना कर दिया।

अगर कोई शख़्स औरतों को ज़लील करता या ज़लील समझता तो बहुत ग़ुस्सा होतीं। कुछ सहाबा एक रिवायत करते थे कि अगर औरत, कुत्ता और गधा नमाज़ी के आगे से निकल जाए तो नमाज़ टूट जाएगी।

हज़रत आइशा (रज़ि.) ने सुना तो फ़रमाया, "तुमने औरत को कुत्ते और गधे के बराबर कर दिया, क्या औरत एक बुरा जानवर है?"

पिछले पन्नों में आप पढ़ चुके हैं कि हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) ने घोड़े घर और औरत को मनहूस कहा। जब हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास यह रिवायत पहुँची तो आपको ग़ुस्सा आ गया और फ़रमाया, "उस ख़ुदा की क़सम जिसने मुहम्मद (सल्ल.) पर क़ुरआन उतारा। आपने यह नहीं कहा बल्कि यह कहा कि अज्ञानता के ज़माने में उन्हें मनहूस समझा जाता था। अबू हुरैरा (रज़ि.) पूरी बात न सुन सके।"

औरतें नबी (सल्ल.) से मसले पूछने आया करतीं। आम मसले तो पूछ लेतीं लेकिन अपने ख़ास मसलों में हया आती तो हज़रत आइशा (रज़ि.) को वकील बनातीं। हज़रत आइशा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) से पूछतीं फिर जवाब औरतों को बता देतीं।

एक पते की बात सुनिए, निकाह के लिए ज़रूरी है कि लड़की अपनी रज़ामन्दी दे। इसे क़बूलियत कहते हैं। क़बूलियत के मामले में बेवा औरतें तो खुलकर इजाज़त दे देती थीं लेकिन कुँवारी लड़कियाँ हया की वजह से परेशानी में पड़ जाती थीं। हज़रत आइशा (रज़ि.) कुँवारियों की नफ़सियात को जानती थीं। उन्होंने यह मुश्किल नबी (सल्ल.) के सामने रखी तो नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया कि, "लड़की का ख़ामोश हो जाना ही इजाज़त है।"

एक बार एक लड़की आई, उसने हज़रत आइशा (रज़ि.) से कहा। "मेरे बाप ने मेरी शादी नाबालिग़ उम्र में कर दी, मुझसे इजाज़त नहीं ली", हज़रत आइशा (रज़ि.) ने उससे कहा, "बैठ। नबी (सल्ल.) आएँ, तो मेरे सामने मसला पेश करना।" नबी (सल्ल.) तशरीफ़ लाए तो लड़की ने मामला पेश किया। नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "तू चाहे तो निकाह तोड़ दे।" लड़की ने जवाब दिया, "नहीं, मुझे रिश्ता मंज़ूर है, मैं तो अपनी बहनों का हक़ ज़ाहिर करना चाहती थी, वह ज़ाहिर हो गया।"

एक मसला है कि अगर शौहर मर जाए तो उसकी बेवा को चार महीने दस दिन तक इद्दत में बैठना चाहिए और घर से बाहर किसी दूसरे मक़ाम पर नहीं जाना चाहिए। इस मसले पर यह फ़तवा दिया जाने लगा कि शौहर जहाँ मरे वहीं औरत को इद्दत के दिन गुज़ारना चाहिए या अगर औरत साथ न हो तो जहाँ उसे ख़बर मिले वहाँ ठहर जाए और इद्दत पूरी करे। वहाँ से बाहर जाना और सफ़र करना उस पर हराम है। इस फ़तवे से बेवा को जो परेशानियाँ होने लगीं वे ये हैं, कभी ऐसा होता कि शौहर किसी ग़ैर जगह मरता, वह जगह ख़तरनाक होती, जान-माल के लिए भी और इज़्ज़त के एतबार से भी। इस मुश्किल को हज़रत आइशा (रज़ि.) ने एक हादसे के वक़्त हल किया। उनकी एक बहन हज़रत तलहा को ब्याही थीं। हज़रत तलहा जमल की लड़ाई में शहीद हुए, बीवी साथ

थीं। ऊपर जो राय आ चुकी है उसके मुताबिक़ हज़रत तलहा (रज़ि.) की बेवा को वहीं रुक जाना चाहिए था। लेकिन हज़रत आइशा (रज़ि.) उनको अपने साथ ले आईं। चूँकि फ़तवे के ख़िलाफ़ अमल था, लोगों में चर्चा हुई। मशहूर इमाम अय्यूब ताबई (रह.) से कहा गया कि हज़रत आइशा (रज़ि.) ने ऐसा क्यों किया। हज़रत अय्यूब (रह.) ने जवाब दिया कि हज़रत आइशा (रज़ि.) ने तलहा (रज़ि.) की बेवा को घर से नहीं निकाला बल्कि घर ले आईं। उस नतीजे के सामने आने के बाद लोग बहुत ख़ुश हुए और फिर आम तौर पर ऐसे हादसों के मौक़ों पर हज़रत आइशा (रज़ि.) का अमल हुज्जत (प्रमाण) बन गया। कितना बड़ा एहसान है यह औरत ज़ात पर।

एक मसले में औरत की स्थिति और भी दयनीय थी। मसला इस तरह है कि अगर शौहर अपनी बीवी को तलाक़ का इख़्तियार सौंप दे और वह बीवी उस इख़्तियार को वापस करके शौहर की बीवी रहना ही क़बूल करले तो–?

कुछ सहाबा (रज़ि.) का फ़तवा था कि "इस तरह एक तलाक़ रजई[1] पड़ जाएगी।"– लेकिन हज़रत आइशा (रज़ि.) ने बड़ी सख़्ती से उस फ़तवे को दूर किया, फ़रमाया कि "नबी (सल्ल.) ने आयत तख़ईर के बाद हम पाक बीवियों को यह इख़्तियार दिया था, लेकिन हम सबने इस इख़्तियार को वापस करके नबी (सल्ल.) की बीवियाँ बनकर रहना ही क़बूल किया था। तो क्या हम सब पर एक तलाक़ पड़ गई? क्या हमारी वफ़ादारी का यह ख़ून न होगा? हरगिज़ नहीं! हमने जो त्याग और क़ुरबानी की है और नबी (सल्ल.) के साथ जो ग़रीबी पसन्द की है उसके बदले में शरीअत हमें यह दाग़ नहीं दे सकती।" और फिर इमामों और मुहद्दिसों ने हज़रत आइशा (रज़ि.) ही के फ़तवे को क़बूल कर लिया।

इसी तरह औरत को एक और ज़ुल्म से नजात दिलाई। वह यह था कि अगर किसी आदमी को कोई मजबूर करे कि वह अपनी बीवी को तलाक़ दे दे या ज़बरदस्ती करे, धौंस दे, क़त्ल की धमकी दे या सज़ा का डर दे और शौहर इन

---

1. तलाक़ रजई उस तलाक़ को कहते हैं जिसमें मियाँ-बीवी के लिए यह गुंजाइश होती है कि इद्दत की अवधि के दरमियान जब चाहें मिलाप कर सकते है। और यदि इद्दत का समय निकल जाए तो बिना किसी कठिनाई के आपस में दोबारा निकाह क़र सकते हैं।

मजबूरियों की वजह से ज़बान से तलाक़ दे दे तो क्या वह तलाक़ पड़ गई ?

कुछ उलमा कहते हैं कि तलाक़ पड़ गई। लेकिन हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि यह तलाक़ शरीअत के मुताबिक़ नहीं हुई। बाद के इमामों में इमाम अबू हनीफ़ा (रह.) की राय है कि तलाक़ सचमुच हो गई। इमाम अबू हनीफ़ा के अलावा बाक़ी सभी इमाम, मुहद्दिस और फ़क़ीह हज़रत आइशा (रज़ि.) के साथ हैं।

अरब में लोग धड़ाधड़ तलाक़ दे देते, फिर रूजू कर लेते फिर तलाक़ दे देते। न कुछ हद न पाबन्दी। इस तरह ग़रीब औरत की गरदन मुसीबत में फँसी रहती, वह ज़ुल्म सहती रहती। उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) ने इसकी रोकथाम के लिए बार-बार अल्लाह के रसूल से अर्ज़ किया। नबी (सल्ल.) अल्लाह के हुक्म के इन्तिज़ार में थे कि यह आयत नाज़िल हुई :

> "तलाक़ दो बार है (यानी दो बार तलाक़ देकर रूजू कर सकते हो) उसके बाद या तो सबको बताकर बीवी बनाकर रोक लेना है या फिर भले तरीक़े से जुदा कर देना।" (क़ुरआन, 2:229)

यह सदक़ा है उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) का जिससे आज उम्मत उस बुराई से बची है जिसमें पहले थी और जिसमें आज यूरोप की औरत इस तरह फँसी है जैसे कोई दलदल में फँसा होता है।

आख़िर में एक दिलचस्प बहस का क़िस्सा और सुन लीजिए– एक औरत हज को गई। हज के दिनों में पाकी से महरूम हो गई, मामला फ़ितरी है इसलिए उसकी कोई ख़ता नहीं। अब क्या करे ? हज की नीयत तोड़ दे तो दोबारा हज को जाए और अगर फिर से दूसरे साल भी पाकी से महरूम हो गई तो ? और अगर हज अदा करे तो नापाकी में कैसे ? आगे क़दम बढ़ाना भी ग़लत और पीछे लौटना भी मुश्किल।

बड़े-बड़े सहाबियों को लीजिए, हज़रत ज़ैद बिन साबित (रज़ि.), हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) और हज़रत उमर (रज़ि.) कहते हैं कि ऐसी औरत को रुक जाना चाहिए। हज़रत उमर (रज़ि.) तो ऐसी औरतों को हुक्म देकर रोक

देते थे। लेकिन इसकी क्या ज़मानत थी कि अरफ़ात के मैदान या मुज़दलफ़ा या मिना में औरत उस नापाकी में मुब्तला हो जाए। उस वक़्त क्या हो ?

अल्लाह तआला को औरतों की इस मुश्किल को हल करना था। हज़रत आइशा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के साथ हज को गईं और इसी मुश्किल में फँस गईं। नबी (सल्ल.) से फ़तवा पूछा। नबी (सल्ल.) ने बताया, "ऐ आइशा! काबा के तवाफ़ के सिवा (क्योंकि वह मस्जिद है) वे सारे मनासिक (हज की क्रियाएँ) अदा किए जा सकते हैं जो हाजी अदा करते हैं।

यह क़िस्सा मशहूर इस तरह हुआ कि आइंदा हज़रत आइशा (रज़ि.) ने हज के दिनों में पाकी से महरूम हो जानेवाली औरतों को तवाफ़ के सिवा सारे मनासिक अदा करवाए। हज़रत ज़ैद (रज़ि.) और हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) ने तो हज़रत आइशा (रज़ि.) के अमल से रुजू कर लिया लेकिन शायद हज़रत उमर (रज़ि.) को मालूम न हो सका। वे अपने फ़तवे पर क़ायम रहे। नतीजा यह हुआ कि उनकी ख़िलाफ़त (शासन) के ज़माने में एक बार छः हज़ार औरतें मिना के मैदान में रुकी रहीं फिर जो परेशानियाँ उन औरतों के साथ मर्दों को हुईं, वे ज़ाहिर हैं।

दूसरे ज्ञान-विज्ञान

चिकित्सा-विज्ञान

उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) के भांजे हज़रत उरवा जो अपने वक़्त के मशहूर इमाम हुए हैं, कहते हैं कि मैंने तिब्ब (चिकित्सा-विज्ञान) में हज़रत आइशा (रज़ि.) से बढ़कर किसी को न पाया। हज़रत उरवा के बेटे हिशाम की भी यही राय है। कुछ और शागिर्दों ने भी यही बात कही है।

इसका मतलब यह बिल्कुल न लिया जाए कि हज़रत आइशा (रज़ि.) इलाज करने में माहिर थीं या आला दर्जे की चिकित्सक थीं। बात यह थी कि उस वक़्त अरब में डाक्टरी के हुनर का चर्चा न था। जिस तरह हमारे घरों में बड़ी-बूढ़ियाँ घरेलू इलाज करती हैं और उनमें उनको अच्छी-ख़ासी महारत हो जाती है उसी तरह हज़रत आइशा (रज़ि.) ने दवाएँ याद कर ली थीं। किसी ने हज़रत आइशा (रज़ि.) से पूछा, "आपको इतनी दवाएँ कैसे याद हो गईं?" जवाब दिया कि, " नबी (सल्ल.) के पास दूर-दूर से लोग आया करते थे। नबी (सल्ल.) बीमार हो जाते तो लोग दवा बताते मैं याद रखती।"

बस इतनी बात थी और यह उस वक़्त इतनी बड़ी बात थी कि हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास लोग आने लगे थे। उम्मुल मोमिनीन अपनी इस याद की बदौलत जो ख़िदमत और सेवा कर सकती थीं करती थीं। नबी (सल्ल.) के साथ लड़ाइयों में औरतों के साथ जाती थीं। जो मुसलमान ज़ख़्मी होकर कैम्प में आते उनकी मरहम-पट्टी करती थीं। उहुंद की लड़ाई में मुसलमान ज़्यादातर ज़ख़्मी हुए थे। उनकी देखभाल करने में जो औरतें थीं, उनमें हज़रत आइशा (रज़ि.) भी थीं। एक आदमी ने ताज्जुब के साथ अर्ज़ किया, "आपको अदब, शायरी और तारीख़ में जो मरतबा हासिल है उसपर मुझे ताज्जुब नहीं क्योंकि आप अदब व शायरी और नसब के माहिर अबू बक्र (रज़ि.) की बेटी हैं। लेकिन यह तिब्ब आपने कहाँ से सीखी?" तो उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) ने वही जवाब दिया जो ऊपर लिखा गया कि, "नबी (सल्ल.) की ख़िदमत में

अरब के तिब्ब में माहिर लोग आया करते थे। वे जो बताते थे मैं याद कर लेती थी।''

इतिहास

हज़रत आइशा (रज़ि.) ने इतिहास की जानकारी अपने बाप हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) से प्राप्त की। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) अरब के हालात अच्छी तरह जानते थे। वे अंधविश्वासी रस्मों को भी खूब जानते थे। मशहूर क़बीलों की वंशावली उन्हें याद थी। यह सब उन्होंने बेटी को बताया था। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने यह सब याद रखा। हज़रत उरवा कहते हैं कि मैंने इतिहास और नसब का जाननेवाला आइशा (रज़ि.) से बढ़कर किसी को न पाया। बात भी यही है, अरब की रस्मों के बारे में हदीसों के अन्दर जो कुछ मिलता है उसे हज़रत आइशा (रज़ि.) ने ही बयान किया है। उन्होंने अरबों के रहन-सहन व हालात भी बताए। अरब में शादी किस तरह होती थी? तलाक़ का क्या तरीक़ा था? शादियों में क्या-क्या होता और गाया जाता था? इस्लाम से पहले अरबों के रोज़े का दिन कौन-सा था? मय्यत की रस्में क्या थीं? क़ुरैश हज को जाते तो कहाँ रुकते थे वग़ैरह।

अंसार के हालात और अंसार के दो क़बीलों की लड़ाई का हाल हज़रत आइशा (रज़ि.) ही ने बयान किया है। इसी तरह इस्लामी इतिहास के बड़े- बड़े क़िस्से हज़रत आइशा (रज़ि.) ही से मालूम हुए। हज़रत जिबरील (अलै.) का पहले-पहले आना, वह्य लाना, मुहम्मद (सल्ल.) के नबी होने के हालात, हिजरत के वाक़िआत भी हज़रत आइशा (रज़ि.) की बदौलत उम्मत ने जाने। फिर उन्होंने अपने हालात भी सुनाए। तोहमत का वाक़िआ जो ख़ुद उनपर गुज़रा उसे बड़ी तफ़सील से बयान किया। उनसे जुड़ी जो आयतें उतरीं, उनके बारे में उनसे ज़्यादा जाननेवाला और कौन हो सकता है। चुनाँचे उन्होंने वह सब दूसरों को पहुँचाया।

हज़रत आइशा (रज़ि.) ने बड़ी-बड़ी लड़ाइयों के हालात भी बड़ी तफ़सील से बयान किए हैं। बद्र की लड़ाई, उहुद की लड़ाई, ख़ंदक़ की लड़ाई, बनी क़ुरेज़ा के बहुत से हालात और नबी (सल्ल.) के आख़िरी हज की बातें हज़रत आइशा (रज़ि.) के ज़रिए ही मालूम हुईं।

नबी (सल्ल.) की सीरत का ज़्यादातर हिस्सा हज़रत आइशा (रज़ि.) के ज़रिए हमें हाथ आया। नबी (सल्ल.) के इन्तिक़ाल का हाल, इबादतों की कैफ़ियत, घरेलू जानकारियाँ, नबी (सल्ल.) के अख़्लाक़ व अमल के बारे में, कामों के बारे में, पूरी ज़िन्दगी के बारे में, नबी (सल्ल.) कैसे थे? इस्लाम की ख़ातिर नबी (सल्ल.) की कोशिशें, हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) की हूकूमत के बारे में, हज़रत अली (रज़ि.), हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) और पाक बीवियाँ, ईला, आयत तख़ईर वग़ैरहा क़िस्सा मुख़्तसर यह कि अगर हज़रत आइशा (रज़ि.) ये सारे तारीख़ी (एतिहासिक) हालात न बतातीं तो हमें कुछ न मालूम हो सकता था। उनमें से बहुत से हालात पिछले पन्नों में बयान किए जा चुके हैं।

शाइरी व अदब (साहित्य)

अदब व शाइरी का फ़न (कला) भी हज़रत आइशा (रज़ि.) ने अपने बाप हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) से सीखा था। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) अदब व शाइरी में क्या मक़ाम रखते थे, इसका जवाब हमें उस वक़्त मिला, जब हज़रत हस्सान (रज़ि.) और दूसरे इस्लामी शाइरों ने इस्लाम् के दुश्मन शाइरों के जवाब में शेर कहना चाहे। उस वक़्त नबी (सल्ल.) ने उन इस्लामी शाइरों को राय दी कि पहले हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) से मशविरा कर लो, वे इतिहास और शाइरी व साहित्य की बारीकियों को ख़ूब समझते और जानते हैं।

इन्हीं हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) की बेटी, हज़रत आइशा (रज़ि.) थीं। शेरो-शाइरी समझना, परखना, ज़बान की नज़ाकत का ख़याल रखना, तक़रीर करते वक़्त लफ़्ज़ों का अपनी जगह इस्तेमाल, उपमाएँ और अलंकार जो शाइरी व अदब की जान होते हैं उनको मौक़े पर काम में लाना, ये सारे गुण हज़रत आइशा (रज़ि.) में पाए जाते थे। उनकी शाइरी समझने की ख़ूबियों को देखकर बड़े-बड़े शाइर अपना कलाम सुनाने आते। अरब की मशहूर मरसिया पढ़नेवाली शाइरा हज़रत ख़नसा (रज़ि.) ने अपना कलाम सुनाया। हज़रत हस्सान (रज़ि.) अक्सर ख़िदमत में हाज़िर होते। हज़रत आइशा (रज़ि.) उन सबका कलाम सुनतीं, तारीफ़ करतीं और मुनासिब मशविरे भी देतीं। अरबी साहित्य व शाइरी के पारखी कहा करते, "हमें आपकी इस सलाहियत पर ताज्जुब नहीं क्योंकि

आप अबू बक्र (रज़ि.) की बेटी हैं।'' हज़रत मूसा बिन तलहा कहते हैं कि ''मैंने हज़रत आइशा (रज़ि.) से बड़कर किसी को अच्छी ज़बान बोलते हुए नहीं देखा।''

हज़रत अहनफ़ बिन क़ैस जो ख़ुद बहुत ही अच्छी ज़बान बोलनेवाले थे, कहते हैं कि हज़रत आइशा (रज़ि.) जिस ख़ूबी के साथ बात मुँह से निकालती थीं और जिस तहज़ीब और संजीदगी से बोलती थीं वे अपनी मिसाल आप थीं।

यही साहब यानी हज़रत अहनफ़ कहते हैं कि मैंने हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) हज़रत उमर (रज़ि.), हज़रत उसमान (रज़ि.), हज़रत अली (रज़ि.) और उनके बाद जो ख़लीफ़ा हुए, उन सबकी तक़रीरें सुनी हैं लेकिन जो ज़ोर और असर हज़रत आइशा (रज़ि.) की तक़रीर में पाया वह किसी के कलाम में नहीं पाया।

हज़रत मुआविया (रज़ि.) बड़े सूझ-बूझ वाले और शाइरी व साहित्य जाननेवाले थे। वे कहते हैं कि हज़रत आइशा (रज़ि.) ज़ेहन की तेज़ और अच्छी ज़बान बोलनेवाली थीं।

इस तरह के बहुत से क़ौल हदीस की किताबों में पाए जाते हैं। अनुवाद की मदद से कुछ नमूने यहाँ पेश किए जाते हैं। आप देखेंगे कि जब अनुवाद में इतना ज़ोर है तो असल अरबी में क्या कुछ होगा।

किसी ने नबी (सल्ल.) के अख़लाक़ के बारे में पूछा तो हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जवाब दिया, ''तुम क़ुरआन नहीं पढ़ते ? नबी (सल्ल.) का अख़लाक़ क़ुरआन था।'' यानी क़ुरआन के ठीक मुताबिक़।

यह अन्दाज़ बिल्कुल ऐसा है जैसा किसी साबिर और मज़बूत आदमी के लिए कहा जाए, ''वह तो पहाड़ है पहाड़'' यानी अपनी जगह अटल।

शागिर्दों में से एक ने वह्य की क़िस्मों पर बहस करते हुए पूछा कि, ''नबी (सल्ल.) के ख़्वाबों की क्या कैफ़ियत थी ?'' हज़रत आइशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, ''समझना चाहिए कि नबी (सल्ल.) जो ख़्वाब देखते थे वह इस तरह ज़ाहिर होता था जैसे सुबह सादिक़ की रौशनी।''

सुबह सादिक़ की मधुर और पाकीज़ा सफ़ेदी से नबी (सल्ल.) के सच्चे ख़्वाबों को समझाना किस क़द्र बेहतर तरीक़ा है।

पूछा गया, जब नबी (सल्ल.) पर वह्य नाज़िल होती थी तो नबी (सल्ल.) की क्या हालत होती थी ? हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जवाब दिया, "यूँ समझो कि नबी (सल्ल.) के माथे पर मोती ढलकने लगते थे।" पसीने की बूँदों को मोती कहना, कितनी अच्छी उपमा है।

हज़रत आइशा (रज़ि.) पर तोहमत लगाई गई थी तो उस सदमे से हज़रत आइशा (रज़ि.) को नाक़ाबिले बरदाश्त बेचैनी हुई थी। अपनी बेचैनी को अपने लफ़्ज़ों में यूँ बयान करती हैं, "मैंने आँखों में नींद का सुरमा नहीं लगाया।" नींद का सुरमा किस क़द्र ख़ूबसूरत कहने का अन्दाज़ है। सुरमा काला होता है, फिर नींद का सुरमा कहना, कितना प्रभावकारी ढंग है।

हज़रत आइशा (रज़ि.) की ज़बानी ग्यारह औरतों की कहानी का अनुवाद पिछले पन्नों में दिया गया है। पन्ने उलटकर वे कहानियाँ फिर पढ़ लें आप देखें कि कैसी-कैसी उपमाओं और अलंकारों से काम लिया गया है। आपका दिल कहेगा सागर को गागर में भर दिया है।

शाइरी की कला

नबी (सल्ल.) से पहले और ख़लीफ़ाओं के ज़माने में अरब के अन्दर शाइरी की धूम थी। माहौल का असर ही कहना चाहिए कि इरादा किए बग़ैर लोगों की ज़बान से शेर उबल पड़ते थे। दूसरों के शेर या कलाम याद रखने का यह आलम था कि लोगों को पूरे-पूरे क़सीदे और मरसिए याद थे। मशहूर शाइरों की बड़ी इज़्ज़त की जाती थी। शाइरी में जिस तरह मर्दों ने नाम पैदा किया उसी तरह औरतों ने भी। हज़रत ख़नसा (रज़ि.) एक मशहूर शाइरा थीं, मरसिया कहने में तो उनका जवाब ही न था।

पहले भी बताया जा चुका है कि मशहूर शाइरों की बड़ी इज़्ज़त की जाती थी। ये मशहूर शाइर उन लोगों की बड़ी इज़्ज़त करते थे जो शेर समझ सकते थे और जिनको अच्छे और बुरे शेरों की पहचान थी और जिनमें अरबी ज़बान की आला दर्जे की क़ाबिलियत थी।

हज़रत आइशा (रज़ि.) के वालिद हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) शाइरी को पहचानने और समझने में मशहूर थे। वे क़बीलों की वंशावली जानने के भी माहिर थे। उस वक़्त शाइरी में शाइर ख़ानदानों का ज़िक्र भी किया करता था, इसलिए हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) से मशविरा लेने के लिए बड़े-बड़े शाइर ख़िदमत में आया करते थे। जब नबी (सल्ल.) मक्का से मदीना हिजरत करके गए तो मदीना के शाइरों को हुक्म दिया कि उन शाइरों के जवाब में शेर कहें जो इस्लाम के ख़िलाफ़ शेर कहा करते थे। नबी (सल्ल.) ने यह भी फ़रमाया कि इस बारे में हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) से ज़रूर मशविरा कर लें। चुनाँचे मशहूर अंसार शायर अब्दुल्लाह बिन रवाहा (रज़ि.) काब बिन मालिक (रज़ि.) और हस्सान बिन साबित (रज़ि.) ने हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) से मशविरा करके जवाबी शेर कहना शुरू किए। मक्का के सरदारों और दूसरे शेरो-शाइरी समझनेवाले लोगों ने अब जो अंसार शाइरों का कलाम सुना तो कहने लगे, "ख़ुदा की क़सम! इन शायरों ने अबू बक्र (रज़ि.) से ज़रूर मशविरा किया है।"

इन्हीं अबू बक्र (रज़ि.) की बेटी हज़रत आइशा (रज़ि.) थीं। बेटी ने बाप से यह कला भी सीखी थी। दुःख, सुख और किसी ख़ास असर की वजह से अरबों की ज़बान से शेर निकलने लगते थे। यह बात हज़रत आइशा (रज़ि.) में भी थी लेकिन इस बात से बढ़कर वह बात थी जिसे शेर फ़हमी कहते हैं यानी शाइरी को समझने व परखने की समझ। यही वजह थी कि बड़े-बड़े शाइर उम्मुल मोमिनीन के पास आते, अपनी शाइरी सुनाते और मशविरा लेते। हज़रत आइशा (रज़ि.) मशविरा देने के साथ-साथ अच्छी शाइरी की तारीफ़ भी करती थीं। हज़रत आइशा (रज़ि.) जब शागिर्दों को क़ुरआन और हदीस की बारीकियाँ समझातीं, क़ुरआन की ज़बान का ज़िक्र करतीं तो मशहूर शाइरों के शेर भी पेश करतीं। उन शेरों पर तनक़ीद (टिप्पणी) करतीं। शागिर्द कहते, "माँ! हमें आपकी शाइरी पर ताज्जुब नहीं! हमको मालूम है कि आप अबू बक्र की बेटी हैं।"

एक बार शागिर्दों ने पूछा, "उम्मुल मोमिनीन! क्या नबी (सल्ल.) भी शेर पढ़ते थे?" हज़रत आइशा (रज़ि.) ने जवाब दिया! "हाँ" फिर वे शेर सुनाना शुरू कर दिए जो उन्होंने नबी (सल्ल.) से सुने थे। यह बात हज़रत आइशा (रज़ि.) ही ने लोगों को बताई कि नबी (सल्ल.) शेर को याद नहीं रखते थे।

इसी लिए जब शेर पढ़ते तो ग़लती से लफ़्ज़ों को उलट-पलट देते। मैं अर्ज़ करती "यह शेर तो इस तरह है।" नबी (सल्ल.) फ़रमाते, "मैं शाइरी के लिए पैदा नहीं किया गया।"

उम्मुल मोमिनीन कहती हैं कि नबी (सल्ल.) कभी-कभी अब्दुल्लाह बिन रवाहा के शेर पढ़ा करते थे। शागिर्दों ने अर्ज़ किया, "जैसे यह शेर जिसमें आया है: "जिसको ज़ादे-राह देकर तुमने नहीं भेजा, वह ख़बरें लेकर आएगा।" शागिर्दों ने यह शेर सुना तो फड़क उठे, फिर जब हज़रत आइशा (रज़ि.) ने इसका मतलब समझाया तो शागिर्द दंग रह गए। "जिसको" का मतलब बताया कि वह मौत का फ़रिश्ता है जो रूह निकालता है। अगर उसके साथ "ज़ादे-राह" यानी अच्छे आमाल नहीं भेजे तो तुम आख़िरत में अपने लिए बुरी ख़बर पाओगे।

एक बार नबी (सल्ल.) कमरे में बैठे थे किसी बात पर बहुत ख़ुश नज़र आ रहे थे। उस वक़्त हज़रत आइशा (रज़ि.) ने दो शेर पढ़े जिसका अर्थ यह है:

"वह जो अपनी माँ के पेट की बीमारियों से पाक है और दूध पिलाने वाली दाई के दूध के फ़साद से बरी है। तो जब तुम उसके चेहरे के नूर को देखोगे तो वह तुमको बरसते बादलों के अन्दर ऐसा नज़र आएगा जैसे बिजलियाँ चमक रही हों।"

हज़रत आइशा (रज़ि.) ने दोनों शेर पढ़ कर अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल! इस तारीफ़ के हक़दार तो आप हैं।" नबी (सल्ल.) यह सुनकर ख़ुश हुए।

हज़रत आइशा (रज़ि.) जब इस्लामी शाइरों को मशविरा देतीं तो यह नुक्ता भी बतातीं कि शेर किस तरह इस्लामी विचारों में ढाला जा सकता है कि वह सिर्फ़ तक़रीर बनकर न रह जाए। ऐसे मौक़े पर उन इस्लाम पसन्द शाइरों का कलाम पेश करतीं जिन्होंने अपनी शाइरी को इस्लामी विचारों के मुताबिक़ ढालने में अच्छी-ख़ासी मेहनत की थी। हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास एक औरत आया करती थी, उसके चेहरे का रंग तो काला था लेकिन वह ऐसे शेर कहती थी जिनमें रौशनी होती, जैसे उसका यह शेर–

"हार वाला दिन हमारे लिए ख़ुदा के अजूबों में से था लेकिन शुक्र और एहसान है ख़ुदा का कि उसने हमें कुफ़्र से बचा लिया।" यानी पहले जब हमने इस्लाम क़बूल नहीं किया था तो आख़िरत का दिन, जो हमारे लिए सरासर हार का दिन था उसे हम ख़ुदा का अजूबा समझते लेकिन फिर जब हम मुसलमान हुए तो हमने ख़ुदा का शुक्र अदा किया।

क़बीले 'ज़बा' के नौजवान जमल की लड़ाई में हज़रत आइशा (रज़ि.) की फ़ौज में लड़े थे। वे किसी दुश्मन को हज़रत आइशा (रज़ि.) के ऊँट के पास न आने देते थे। उस लड़ाई में ज़बा के बहुत नौजवान काम आए। ये नौजवान हज़रत आइशा (रज़ि.) को मुख़ातिब करके जो शेर पढ़ते थे हैरत है कि उस हाल में भी हज़रत आइशा (रज़ि.) को उनके शेर याद रह गए। लड़ाई ख़त्म होने पर एक बार ज़बा क़बीले का एक आदमी आया, वह बहुत उदास था। उसका नौजवान भाई हज़रत आइशा (रज़ि.) के ऊँट की हिफ़ाज़त करने में मारा गया था। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने उस आदमी से पूछा, ये शेर कौन पढ़ रहा था–

"ऐ हमारी माँ! ऐ हमारी बेहतरीन माँ! जिसको हम जानते हैं, हम ज़बा की औलाद हैं और इस ऊँट की हिफ़ाज़त करनेवाले। मौत हमारे लिए शहद से ज़्यादा मीठी है।"

उस आदमी ने अर्ज़ किया, "वह मेरा भाई था" यह सुनकर हज़रत आइशा (रज़ि.) का दिल भर आया। वह आदमी कहता है कि इस तरह उम्मुल मोमिनीन ने बेहतरीन मातम पुरसी की।

ख़न्दक़ की लड़ाई इस्लामी इतिहास में मशहूर है। एक दिन घमासान की लड़ाई हुई। हज़रत साद बिन मआज़ (रज़ि.) एक नौजवान थे। वे थोड़ी देर के बाद घर से निकले तो ऊँट को दौड़ाते ले गए, उस हालत में यह शेर पढ़ रहे थे-

"काश! मेरा ऊँट फ़ौरन लड़ाई को पा ले, मौत कितनी प्यारी है जब उसका वक़्त आ जाए।"

हज़रत साद (रज़ि.) का कवच छोटा था। उनकी कलाई खुली हुई थी। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने देखा, साद की माँ पास खड़ी थीं। उनको मुख़ातिब

करके यह शेर पढ़ा, "काश! साद की कलाई को उनके कवच ने ढाँक लिया होता और वह उसकी हिफ़ाज़त कर सकती हालाँकि सबसे बड़ा रखवाला ख़ुदा है।"

अजीब संयोग की बात है कि लड़ाई के वक़्त एक तीर आकर हज़रत साद की कलाई में लगा और उसी से वे शहीद हो गए। मशहूर शाइर हज़रत हस्सान (रज़ि.) अक्सर हज़रत आइशा (रज़ि.) की ख़िदमत में आया करते थे। वे क़सीदे सुनाते। एक बार आए और हज़रत आइशा (रज़ि.) की शान में क़सीदे पढ़ने लगे। हज़रत आइशा (रज़ि.) अपनी तारीफ़ किसी से सुनना पसन्द नहीं करती थीं। हज़रत हस्सान (रज़ि.) ने शेर पढ़ा :–

"वे (हज़रत आइशा रज़ि.) भोली-भाली, औरतों पर तोहमत नहीं लगातीं।" यह सुनते ही हज़रत आइशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, "मगर तुम ऐसे नहीं हो" और उन्हें शेर सुनाने से रोक दिया। याद होगा कि हज़रत हस्सान (रज़ि.) तोहमतवाली घटना में बहक गए थे। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने इसी लिए उन्हें रोक दिया। दूसरी तरफ़ लोगों ने हज़रत हस्सान (रज़ि.) को बुरा कहना चाहा तो उनको भी यह कहकर रोका कि इनको बुरा न कहो। ये नबी (सल्ल.) की तरफ़ से इस्लाम के दुश्मन शाइरों के जवाब में शेर कहते थे।

हज़रत आइशा (रज़ि.) को हज़रत हस्सान (रज़ि.) के पूरे-पूरे क़सीदे याद थे। काब बिन मालिक (रज़ि.) का एक क़सीदा बहुत लम्बा था, वह भी पूरा याद था इसी तरह अज्ञानता के ज़माने के मशहूर शाइरों का कलाम भी याद था।

अब आख़िर में हज़रत ख़नसा (रज़ि.) का वाक़िआ सुन लीजिए: हज़रत ख़नसा (रज़ि.) जब मुसलमान नहीं हुई थीं उस वक़्त उनका एक बहुत अज़ीज़ भाई किसी लड़ाई में मारा गया था, वे उसके ग़म में रोतीं, अपना मुँह पीटतीं औ ग़म के मारे कपड़े फाड़ डालतीं। भाई के ग़म में मरसिए पढ़तीं तो सुननेवाले रो पड़ते। यही हज़रत ख़नसा मुसलमान हुईं तो मदीना में आईं। वे हज़रत आइश (रज़ि.) के पास भी गईं। हज़रत आइशा (रज़ि.) के सामने अपने भाई क मरसिया पढ़ा तो उनपर वही हालत तारी हो गई। हज़रत आइशा (रज़ि.) ने उनको सब्र करने की नसीहत की, समझाया, इस्लामी शाइरी के नुकते पेश

किए। यहाँ से विदा हुईं तो हालत कुछ और थी। ईरान में क़ादसिया की लड़ाई ज़ोरों पर थी। अपने चार बेटों को लेकर क़ादसिया की लड़ाई में शामिल हुईं। वहाँ बेटों को ये शेर सुना-सुना कर लड़ाई करने पर उभार रही थीं:

"प्यारे बेटो! तुमने इस्लाम अपनी मर्ज़ी से क़बूल किया है। तुमने हिजरत ख़ुद की। तुम अपने वतन पर बोझ न थे और न तुम्हारे यहाँ अकाल पड़ा था फिर भी तुम अपनी बूढ़ी-माँ को यहाँ लाए और फ़ारस के आगे डाल दिया। ख़ुदा की क़सम! फिर ख़ुदा की क़सम! तुम एक माँ और एक बाप की औलाद हो। मैंने न तुम्हारे बाप से ख़ियानत की और न तुम्हारे मामूँ को बदनाम किया। तुम जानते हो, दुनिया मिट जानेवाली है और इस्लाम-दुश्मनों से जिहाद करने में बड़ा सवाब है। उठो! उठो! जल्दी करो और आख़िर तक लड़ो।"

चारों बेटे क़ादसिया में शहीद हुए। वही ख़नसा (रज़ि.) जो भाई के ग़म में दीवानी थीं, बेटों के शहीद होने की ख़बर सुनकर ख़ुदा का शुक्र अदा करने लगीं।

बेशक हज़रत ख़नसा (रज़ि.) में यह बदलाव इस्लाम का सदक़ा है लेकिन वाक़ियात बताते हैं कि वे हज़रत आइशा (रज़ि.) से भी प्रभावित हुई थीं।

हमें यह एहसास है कि अनुवाद में वह बात नहीं आती जो अस्ल अरबी में है। बहर हाल एक कोशिश की गई कि हिन्दी पढ़नेवाले हज़रत आइशा (रज़ि.) की शाइरी की रुचि को भी समझ लें। अनुवाद की इस कमज़ोरी की वजह से हमने कुछ ऐसे विषयों को हाथ नहीं लगाया, जिनमें हज़रत आइशा (रज़ि.) अपने ज़माने में विशेष योग्यता रखती थीं।

औरतों के लिए बेहतरीन नमूना

उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) के हालात मुख़्तसर तौर पर आपने पढ़ लिए। उनके इल्मी और अमली सब नमूने आपके सामने आ गए। आपने दुनिया की और बहुत-सी नामी औरतों के कारनामे पढ़े होंगे। सच कहिए, क्या कोई ऐसी औरत आपकी नज़र में है, जिसके अन्दर सामूहिक तौर पर वे सभी बुलन्द किरदार मौजूद हों जो हज़रत आइशा (रज़ि.) की ज़िन्दगी में आपने पाए?

आपने उन नामी औरतों के ऐसे कारनामे ज़रूर पढ़े होंगे, जिन्होंने अचानक कोई बड़ा काम कर डाला और उनका नाम इतिहास की पुस्तकों में आ गया। जैसे उनमें से किसी ने अचानक बढ़कर लोगों के सामने एक जोश भरी तक़रीर कर डाली और लोगों ने उसे अपना लीडर बना लिया या किसी जासूस,देशप्रेमी औरत ने दुश्मनों की साज़िशों का परदा फ़ाश करके अपने देश को ग़ुलामी से बचा लिया। या कोई अपनी अक़्लमन्दी, बुद्धिमत्ता और राजनीतिक सूझ-बूझ की वजह से हुक्मराँ बन बैठी या किसी बहादुर औरत ने लड़ाई के मैदान में दुश्मनों के दाँत खट्टे कर दिए।

उन नामवर औरतों के कारनामे पढ़कर वक़्ती तौर पर एक उमँग तो पैदा हो सकती है, और ज़रा देर के लिए रोंगटे भी खड़े हो सकते हैं। इसके अलावा ज़िन्दगी के सुधार के लिए उनसे कुछ नहीं मिलता । उनकी बाक़ी ज़िन्दगी में अँधेरा नज़र आता है। इसलिए किरदार के वे नमूने उनकी ज़िन्दगी में तलाश करना बेकार है जो हज़रत आइशा (रज़ि.) की ज़िन्दगी में पाए जाते हैं।

हज़रत आइशा (रज़ि.) की ज़िन्दगी का मुक़ाबला उन बुलन्द और अज़ीम किरदारवाली औरतों ही से किया जा सकता है जिनको हज़रत आइशा (रज़ि.) की तरह सीधा नबी (सल्ल.) से इल्म हासिल करने और तरबियत पाने का मौक़ा मिला। यानी नबी (सल्ल.) की बीवियाँ और बेटियाँ। उनकी बड़ाई और महानता में बहुत-सी हदीसें मौजूद हैं। उन हदीसों की मदद से सभी इस्लामी आलिमों ने

कहा है कि औरतों में हज़रत ख़दीजा (रज़ि.), हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) और हज़रत आइशा (रज़ि.) का मरतबा सबसे बुलन्द है। एक और हदीस से फ़िरऔन की बीवी हज़रत आसिया (रज़ि.) और हज़रत ईसा (अलै.) की वालिदा हज़रत मरयम (अलै.) का औरतों में कामिल होना साबित है।

हदीस का अनुवाद इस तरह है– (मशहूर सहाबी) हज़रत अबू मूसा अशअरी से रिवायत है कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, मर्दों में बहुत से कामिल और मुकम्मल गुज़रे लेकिन औरतों में मरयम बिन्त इमरान और फ़िरऔन की बीवी आसिया के अलावा कोई और मुकम्मल व कामिल नहीं हुई और आइशा (रज़ि.) को औरतों पर उसी तरह फ़ज़ीलत हासिल है जिस तरह सरीद खाने को दूसरी क़िस्म के खानों पर।" (हदीस: बुख़ारी मुस्लिम)

हज़रत आसिया, मिस्र के ज़ालिम बादशाह फ़िरऔन की मलिका (बीवी) थीं। वे हज़रत मूसा (अलै.) पर ईमान लाईं। फ़िरऔन ने उनपर बड़े-बड़े ज़ुल्म किए। लेकिन वे मज़बूती से इस्लाम पर जमी रहीं। मासूम मरयम (अलै.) एक ग़ैर फ़ितरी (अप्राकृतिक) आज़माइश में फँस गईं और सब्र के साथ साबित क़दम रहीं। हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) ने इस्लामी तहरीक को शुरू करने और आगे बढ़ाने में क़दम-क़दम पर नबी (सल्ल.) का साथ दिया, अपना सब कुछ नबी (सल्ल.) पर क़ुरबान कर दिया। ये वे बुलन्द औरत थीं कि नबी (सल्ल.) उनके इन्तिक़ाल के बाद ऐसे लफ़्ज़ों में उन्हें याद करते रहते थे कि ख़ुद हज़रत आइशा (रज़ि.) को उनकी ज़िन्दगी और ख़िदमत पर रश्क आता था। सय्यदा फ़ातिमा (रज़ि.) नबी (सल्ल.) की प्यारी बेटी और जन्नत में औरतों की सरदार हैं। हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि फ़ातिमा (रज़ि.) से बढ़कर नबी (सल्ल.) से मिलता- जुलता कोई न था।

ऐसी बहुत-सी हदीसों के मुताबिक़ इन क़ाबिले एहतिराम बुलन्द मक़ामवाली हस्तियों की बड़ाई साबित है। इन सब से मुहब्बत करना हमारा ईमान है। बेशक ये सब अपनी किसी ख़ास ख़ूबी में अपना जवाब आप हैं।

लेकिन ग़ौर कीजिए, इन सबमें भी वह कौन-सी औरत है जिसने दीन, अख़लाक़ और पाकीज़गी के साथ-साथ मज़हबी, इल्मी, राजनैतिक, सामाजिक

और इसी तरह के दूसरे फ़र्ज़ पूरे किए हों। हज़रत आइशा (रज़ि.) की तरह दीन व शरीअत को खोल-खोल कर बयान किया हो, क़ुरआन और हदीसों की तालीम को आम किया हो, ज़िन्दगी के हर हिस्से में ख़ुदापरस्ती के नमूने छोड़े हों, औरतों को हक़ और अधिकार दिलाने में आगे-आगे रही हों, रसूल के सामने उनकी बेहतरीन वकालत की हो, अपने बाद ऐसे शागिर्द छोड़े हों, जो अपने वक़्त के इमाम कहलाएँ, सामूहिक हैसियत से ऐसी मुकम्मल ख़ूबियाँ हों जैसी हज़रत आइशा (रज़ि.) में हैं। आख़िर कोई तो वजह है कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया! " दीन इस गोरी औरत से सीखो, इसे औरतों में इसी तरह बड़ाई हासिल है जिस तरह खानों में सरीद खाने को।"

इन तमाम बातों को जानने और जायज़ा लेने के बाद हम दावे के साथ कह सकते हैं कि सामूहिक हैसियत से दुनिया की औरतों के लिए उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा सिद्दीका (रज़ि.) ही बेहतरीन नमूना हैं। आपके सामने हज़रत आइशा (रज़ि.) की ज़िन्दगी के हालात आ गए और यह जायज़ा भी। अब आप ख़ुद फ़ैसला करें।

हमारी दुआ है कि औरतें उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) की पाक सीरत को सामने रखें और दीन व शरीअत का वह अमली नमूना पेश करें, जो इस्लाम चाहता है और जिसकी खोज में दुनिया भटक रही है।

(आमीन)